आचार्य चतुरसेन

# पत्थर युग के दो बुत



राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली

मूल्य पाच रुपये

पाचवा सन्करण १६६६

PATTHAR YUG KE DO BUT by Chatursen Shastri
NOVEL Rs. 5

पत्थर-युग के दो बुत मुझे मिले हैं—
एक औरत, दूसरा मर्द
ज़माने ने इन्हे सभ्यता के बडे-बडे लिबास पहनाए
इन्हे सजाया-सवारा, सिखाया-पढाया
जमाना आगे बढता गया
और वह सभ्यता के शिखर पर जा बैठा
पर ये दोनो बुत अपने लिबास के भीतर आज भी
वैसे ही पत्थर-युग के बुत हैं
इनमे एक बाल-बराबर भी अन्तर नहीं पडा है
एक है औरत और दूसरा है मर्द—

क्या वताऊँ किस कदर जजीरेपा सावित[1] हुए
चन्द तिनके, जिनको अपना आशियाँ समझा था मैं

---

१ पाव की ज़ जीर।

# रेखा

आज यह उनका पाचवा 'वर्थ-डे' है, शादी के वाद। जिनमे से वे केवल एक मे ही घर पर हाज़िर रहे—पहले ही वर्थ-डे पर, जो शायद हमारे विवाह के पाच महीने वाद ही पडा था। उस समय तक तो मेरे मन का सकोच और झिझक भी नही मिटी थी। उस समय मेरी आयु इक्कीस वरस की थी, और उनकी वत्तीस वरस की। वे केन्द्र मे उस समय वित्त-मन्त्रालय मे उपसचिव थे। उनका रुग्राबदार चेहरा, मेघ-गर्जन-सा स्वर-घोष, वलिष्ठ गौर शरीर, वडी-वडी उभरी हुई आखें, उठी हुई नाक और धीर-गम्भीर भाव-भगिमा तव ऐसी थी कि मैं उन्हे देखते ही सहम जाती थी। वातचीत का उनका ढग हाकिमाना था। सव वातो मे जैसे वे आज्ञा ही देते थे। नौकर-चाकर, चपरासियो की—पी० ए० सेक्रेटरी और दफ्तर के दूसरे कर्मचारियो की एक फौज सदैव उनके पीछे लगी रहती थी। एक के वाद दूसरी फाइलो के गट्ठर लेकर उनके दफ्तर के कर्मचारीगण आते, सहमे-सहमे-से उनकी कुर्सी के पीछे अदव से खडे होते, उनके हस्ताक्षर कराते। हस्ताक्षर करते-कराते वे उनसे वीच-वीच मे कुछ प्रश्न करते। प्रश्नो का उत्तर देते हुए उनके पी० ए० सेक्रेटरी की जवान लडखडा जाती। उनके नेत्रो से नेत्र मिलाकर जवाव देने का किसी को साहस न होता—वहुधा उनमे से अनेको के चेहरे पर पसीना आ जाता। चपरासी पत्थर की मूर्ति की भाति घण्टो अचल उनके सकेत की प्रतीक्षा मे खडे रहते। यह सव मैं देखती—और देखकर मैं भी उसी भाति जड-स्तव्ध रह जाती। उनके निकट जाने, उनसे वात करने मे मुझे डर लगता था। मैं घवरा जाती थी।

क्यो न घबराती भला ? मैं तो एक साधारण गृहस्थ की कन्या हू। मेरे पिता के घर पर तो केवल एक ही नौकर घर का सब काम-धन्धा करता था। पिताजी उसके साथ परिवार के एक सदस्य की भांति ही व्यवहार करते थे। वह हमारा पुराना नौकर था। मुझे उसने बचपन मे गोद खिलाया था। वह मुझे 'बिटिया रानी' कहता था। विवाह होने के बाद तक भी वह इसी तरह कहता रहा। मैं उसे दद्दा कहती थी। मा उसे बहुत मानती थी। और वह हमारे सारे ही दु ख-सुख मे सम्मिलित था। पिता की मैं इकलौती बेटी हू। तीन भाई हुए, और जाते रहे। मा उनकी याद कर-करके रोती रही। बहुत बार उन्होंने मुझे छाती से लगाकर मेरे भाइयो की स्मृति मे आसू बहाए। कदाचित् इसी से माता और पिता का समूचा प्यार मुझ अकेली पर उमड आया था। इतना प्यार भी किसी को मिल सकता है, यह मैं तब नही, पर अब सोचती हू—उनसे दूर होकर, उनकी स्नेहमयी गोद से छीनी जाकर।

आरम्भ मे पिताजी ने मुझे स्वय ही पढाया। उस पढाने मे कितना दुलार था! ये बचपन की बाते हैं पर उन्हे भूली नही हू। भूल सकती भी नही हू। इसके बाद स्कूल-कालेज, कालेज की सहेलिया, विवाह के पूर्व का वह निर्द्वन्द्व जीवन, जब शैशव विदा हो रहा था और यौवन आख-मिचौनी के खेल खेल रहा था, गुदगुदाता था, खिलखिलाता था, छूता था, पर दीखता न था। कैसा मनमोहक था वह खेल! कितना मन को भाता था! कितना हॅसती थी मैं, और कितनी बातें करती थी—आज सोचती हू तो सोचती ही रह जाती हू। बात-बात पर मचलती, मा की गोद मे गिर जाती, जैसे अभी भी मैं एक दूधपीती बच्ची थी। और मा भी अभी जैसे मुझे वैसी ही दूधपीती बच्ची समझती थी। ऐसा दुलार करती थी। मुझे तो याद नही, मैंने कभी मा का कोई अपराध किया हो, या मा ने मेरी कोई भूल-चूक अपराध मानी हो। और पिताजी, बेचारे ऐसे निरीह निष्पाप—ज्यो-ज्यो मैं बडी होती गई, मेरे अनुगत होते गए। उनपर मै निर्द्वन्द्व शासन चलाती, जो चाहती करा लेती। मेरी किसी इच्छा मे वे

[illegible] हुए [illegible] देर तक हृदय से लगाये रहते। [illegible] समझाते [illegible] के [illegible] के कामों में [illegible]। पिताजी के लिए एक [illegible] हुआ [illegible]। पिता जी मुझे राजा के नाम से सम्बोधन करते थे। वे मुझे पुत्री नहीं पुत्र मानते थे। उनके मुँह से 'राजा' सम्बोधन कितना प्यारा लगता था मुझे! आज भी मेरे कानों में वह प्यारा सम्बोधन गूँजता रहता है। [illegible] हुई कि पिताजी कहते—राजा बेटा आज हमें चाय नहीं मिली! और मैं घर-आँगन में अपनी अल्हड़ हँसी बखेरती जाती [illegible] चाय का प्याला लेकर।

वे दिन मेरी आँखों में अब भी बस रहे हैं। अभी [illegible] पाँच ही बरस तो हुए। मेरे रक्त की प्रत्येक बूँद में रमे हुए हैं वे दिन। [illegible] सकती हूँ! परन्तु मुझे इस [illegible] में धकेलकर जैसे वे [illegible] चित प्रिय दिवस चले गए वैसे ही चले गए मेरे वे माता-पिता [illegible] मेरी आत्मा के आधार और मेरे जीवन के निर्माता, प्रेम, त्याग, तप और आत्म-दान के महादाता।

उस घर में और इस घर में [illegible] जीवन में तो ज़मीन-आसमान का अन्तर है। अब तो मैंने अपने को इस जीवन का अभ्यस्त बना लिया है, सब कुछ [illegible] गया है, पर तब तो सब कुछ पराया-सा, अटपटा-सा, अपरिचित-सा, असह्य-सा लगता था।

से अपनी छाती तर कर ली थी। और वहीं एक बात कहकर मुझे उनके साथ भेज दिया था। वे मेरे हैं, यह तो मैं र म समझ गई, जान गई, किन्तु क्यो है यह न जान पाई—न तब, न अब, पाच साल बीत जाने पर भी। कभी सोचती, मेरे स्वामी है, पति स्त्री का स्वामी होता हे—यह तो मैंने बहुत पुस्तको मे पढा था, बहुत जगह सुना था, नो मैं सोचती, वे मेरे स्वामी है, फिर सोचती, पति हैं। स्वामी क्यो ! पर ज्यो-ज्यो निकट होती गई, परदा दूर होता गया, तन का भी और मन का भी। तब सोचने लगी–स्वामी नही, सखा हैं। ऐसे भी क्षण आए जब सोचना पडा—सब-कुछ हैं। अथवा हम दो नही हैं, अभिन्न है—वे मैं हू, और मैं वे हैं।

उन्होने जब पहली बार मुझे अपनी बलिष्ठ भुजाओ मे कसकर मेरे अछूते अधरो पर अपना प्रथम नर्म-गर्म चुम्बन अकित किया, तब मुझे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे अकस्मात् ही किसी दुर्दम्य शक्ति ने मुझे उछालकर उस दुरारोह पर्वत की उत्तुग चोटी पर फेक दिया। भीति और आनन्द ने मुझे झकझोर डाला। मैं हाफने लगी। परन्तु इसके बाद मैं जैसे वह छोटी-सी निरीह बालिका न रह गई। नारी की गरिमा ने जैसे मुझे दबोच लिया। मैंने उस पर्वत के उत्तुग शिखर पर से देखा, सारा ससार तुच्छ-सा, छोटा-सा लग रहा था। और इसके बाद मैंने देखा उनका स्वच्छन्द हास्य, उज्ज्वल आह्लाद, उल्लास, उज्ज्वल प्यार और प्यार का अकथ उन्माद, विलास और भोग का ऐश्वर्य जो अब मेरे चारो ओर बिखरकर बह रहा था, समेटे से न समेटा जा सकता था। अनिर्वचनीय था वह। मैं छक गई थी, किन्तु वे ! वे बिखेरे जा रहे थे, आनन्द का, प्यार का, उन्माद का अटूट प्रवाह, पहाडी निर्भर की भाति झर-झर-झर-झर।

यह सब उनके उस रूप से भिन्न था, जो मैंने आने पर देखा था, जिसने मुझे भयभीत कर दिया था। मैंने जाना—उनकी वह महत्ता, शान और प्रभाव औरो के लिए है, मेरे लिए प्यार है, हास्य है, आलिगन है, चुम्बन हैं, आत्मार्पण है। यह देखकर मेरी भीति भाग गई। अभिन्न दृष्टि उदय हुई। प्यार का एक अकुर उगा और देखते ही देखते मुझे—मेरे

आपे को अतिक्रान्त कर गया। भूल गई मैं अपने को—अपने नारी-जीवन को, अपने तन को, मन को, अपनेपन को। रह गई वही वज्रवत् की आधार-शिला, वलिष्ठ वाहुओ का वह आवेष्टन, चुम्बन का वह महादान। और मैं गरिमा मे डूब गई। कहा गया वह शैशव व वाल-लीला, माता-पिता का वह लाड-प्यार, जिसे जीवन का अब तक आधार समझती रही। अब तो ऐसा लग रहा था—वह सब तो एक स्वप्न था—वास्तविक जीवन तो अब आरम्भ हुआ है, इक्कीस वर्ष की वय मे। अपने ही भीतर मैंने अपने को नया जन्म धारण करते देखा—इस नये जन्म के वाद मेरा जीवन भी नवीन हो गया। अब इसकी उस अतीत शैशव ने भला क्या तुलना हो सकती थी!

दुर्भाग्य ही कहना चाहिए कि इस बीच मेरे माता और पिता स्वर्ग-वासी हो गए। पर अपने सौभाग्य के ऐश्वर्य मे मैं ऐसी मदहोश थी कि यह दुर्भाग्य मुझे कुछ खला ही नही। यह तो मैंने समझा कि कुछ मेरा अपना खो गया, पर उससे मेरी कुछ हानि हुई, ऐसा तो मैंने समझा ही नहीं! पत्थर पडे मेरी वुद्धि पर, मेरी स्वार्थपरता पर, मेरी मूढता पर! मैं ऐसी मतवाली हो गई कि माता-पिता की उस गोद को एकवारगी ही भूल गई—जिसने पूरे इक्कीस वरस तक अपने वात्सल्य से मुझे यौवन के राजसिंहासन पर ला विठाया था। हा, मैं रोई थी, पर उन्होने मुझे अधिक रोने नहीं दिया, मेरे आसू-भरे नेत्रो पर चुम्बन के अनगिनत अक अकित करके गीली आखो को सूखा कर दिया। मैंने देखा, तिनके का सहारा खोकर मुझे अब विशाल वटवृक्ष का सहारा मिल गया। ससार की सब पुत्रियो की भाति मैं भी इस अहम्मन्यता की शिकार वन गई। माता-पिता को म भूलती चली गई।

और अब आया उनका जन्म-दिन! उनका यह वत्तीसवा जन्म-दिन था। पर मेरे लिए पहला ही था। अभी पाच ही महीने तो मुझे व्याहकर आए हुए थे। इसी वीच प्यार के सुख और माता-पिता के विछोह के दुःख ने मुझे झकझोर डाला था। म कुछ खोई-खोई-सी रहती थी। वे आफिस जाते तो मैं घर मे सोते-जागते, उन्ही का स्वप्न देखती। वही आलिंगन, वही

चुम्बन, वही वज्रहास पहाड को हिला देनेवाला, वही वज्र-वक्ष और प्यार की चितवन एव अतीन्द्रिय आनन्द का चरम आदान-प्रदान। मेरा सूक्ष्म शरीर मडराता रहता उनकी मानस-मूर्ति के चारो ओर, दुनिया मे और भी कही कुछ है, मैं नही जानती थी, नही देखती थी। मेरे शरीर के भीतर मेरे रक्त की प्रत्येक बूद मे उनकी कमनीय मूर्ति बसी थी, और मेरे नेत्रो के बाहर सूरज के प्रकाश मे सुशोभित रगीन विश्व मे तथा धवल चन्द्र-ज्योत्स्ना की उज्ज्वल छटा मे वे ही दीख पडते थे—केवल वे ही।

और जब वे सशरीर मेरे सामने आ खडे होते थे तब जैसे विश्व मे असख्य रूपो मे बिखरी हुई उनकी मूर्तिया सिमटकर एकीभूत हो गई हो—ऐसा मुझे भान होता था। क्या कहू मैं अपनी बात, मैं दीवानी हो गई थी। मैं होश-हवास खो बैठी थी। किस भाग्यवती को कभी प्रेम का ऐसा भयानक बुखार चढा होगा! किस नारी ने प्रेम का यह उज्ज्वल-उत्कट रूप देखा होगा!

एक दिन अकस्मात् ही उन्होने आकर मुझसे कहा, "आज मेरा बर्थडे है।" और पाच सौ रुपयो के नोटो का गड्डर मेरे हाथ मे थमा दिया। "कुछ मित्र भी आएगे शाम को, जैसी ठीक समझो, व्यवस्था करना और एक अच्छी-सी साडी अपने लिए ले आना।" वे तो इतना कहकर और एक चुम्बन लेकर आफिस चले गए। और मैं उन नोटो के गड्डर को हाथ मे लिये जड बनी बैठी रही। क्या करू, मेरी समझ मे नही आ रहा था। बचपन मे मेरे माता-पिता मेरा जन्म-दिन मनाते थे। मेरे लिए मिठाइया आती थी, नये कपडे आते थे, खिलौने और सौगातें आती थी, पर वे सब तो बचपन की बाते है। ये तो बच्चे नही है, फिर यह बर्थडे कैसा मनाया जाएगा! परन्तु शीघ्र ही मेरी जडता दूर हो गई। मन स्फूर्ति से भर गया। तभी आफिस का चपरासी आ उपस्थित हुआ। उसने कहा, "गाडी ले आया हू। चलिए बाज़ार से जो-जो खरीदना है ले आइए।" और मैं न जाने क्या-क्या खरीद लाई। चपरासी ने भी बहुत मदद की। मिठाइया, नमकीन, फल, बिस्कुट, पेस्ट्री, मुरब्बे, पापड और न जाने क्या-क्या? कौन-कौन आएगे, यह मैं नही

जानती थी। क्या होगा, यह भी नही जानती थी। पर ज्यो-ज्यो चीज़े मै खरीदती जाती थी, मेरा दिल उमग मे हिलोरे लेता जाता था। मैंने एक आसमानी रग की साडी भी खरीदी। बहुत माथापच्ची करनी पडी मुझे। न जाने उनको पसन्द आएगी भी या नही। मैंने तो अब अपना आपा ही खो दिया था—उन्ही की आख से अपने को देखती थी। साडिया पसद ही नही आ रही थी। अन्त मे बहुत-बहुत हिचकिचाहट के बाद एक साडी खरीदी और एक मफलर लिया उनके लिए भी। चपरासी से मैंने बहुत सलाह-मशवरा किया। बेचारा बूढा ब्राह्मण था। और सब नौकर-चाकर आफिसवाले मुझे 'मेम साहब' कहते थे, पर यह बूढा ब्राह्मण मुझे 'माजी' कहकर पुकारता था। बडा भला लगता था मुझे इसके मुह से माजी सुनना। मुझे याद आता था—पिता के घर का बूढा नौकर रामू, जो मुझे 'बिटिया रानी' कहकर पुकारता था। मैंने घर के बडे-बूढे की भाति इस ब्राह्मण सेवक से खूब सलाह-मशवरा करके एक-एक चीज़ खरीदी थी। कौन चीज़ साहब को पसन्द होगी—इस पर मैं इस बूढे चपरासी की राय को एकदम महत्त्व देती रही। बहुत-सी सामग्री खरीदकर मैं लौटी।

बडी धूमधाम रही रात को। बडे-बडे आदमी आए। एक गायक ने सगीत-गान किया। हँसी-मज़ाक, चुहल—खाना पीना खूब हुआ। स्त्रिया भी आई, पुरुष भी आए। सबसे मेरा परिचय हुआ। नमस्कार का आदान-प्रदान हुआ। आनन्द का एक नया-निराला सामूहिक रूप मैंने देखा।

धीरे-धीरे सब लोग जाने लगे। हँस-हँसकर बधाइया देते जाते थे, सब सम्भ्रान्त पुरुष-स्त्री मुझे बहुत भले लग रहे थे। वर्थ-डे का यह त्योहार मेरे मानस-पटल पर घर कर गया। सब चले गए—पर उनके कुछ अतरग मित्र भीतर के कमरे मे अभी जमे बैठे थे। वहा उनका 'ड्रिंक' चल रहा था। इस ड्रिंक से मै पहले अपरिचित थी। शराब वे पीते थे—यह मैं जान तो गई थी, पर शराब कैसे पी जाती है, यह न जानती थी। घर मे वे शराब नही पीते थे। बहुत दिन बाद पता चला कि विवाह से प्रथम पीते थे—विवाह के बाद घर मे बन्द कर दिया था—क्लब मे जाकर पीते थे, इन

पाच महीनो मे मैंने उन्हे एक वार भी मदहोश नही देखा था। शराब की तेज़ महक अवश्य उनके मुह से आती थी, पर वह महक कैसी है, यह मैं नही जानती थी। शर्म के मारे पूछ भी न सकती थी। कभी-कभी मुझे सहन नही होती थी। फिर भी मैं अपनी ग्लानि को नहीं प्रकट करती थी। किन्तु आज मैंने देखा। सबके जाने पर उनके तीन-चार अन्तरग मित्र पीने बैठे थे। मैं उस मडली मे नही गई। कोई स्त्री उस मडली में न थी। सब पुरुष ही थे। यो वे मुझे बुलाकर अपने मित्रो से परिचय कराते थे। पर इस वक्त नही बुलाया। रात बीतती जा रही थी और मैं उनके अक मे समा जाने को छटपटा रही थी। पर यह मडली तो जमी बैठी थी। रामचरन चपरासी से—उसी बूढे ब्राह्मण से मैंने पूछा, "वहा अब ये क्या कर रहे हैं? खाना-पीना तो सबका कब का खत्म हो चुका।" बूढा चपरासी सब जानता था। रात-दिन बडे अफसरो मे रहता था। भला उससे क्या बात छिपी थी! पर वह मुझसे सब बातें खोलकर कहना नही चाहता था। जब-जब मैंने पूछा, तो उसने यही कहकर टाल दिया, "अपना दिल बहला रहे है माजी। खुशी के मौके पर तो ऐसा होता ही है। सब बडे आदमी बैठे हैं।" बहुत बार पूछने पर बताता, 'ड्रिंक हो रहा है।' यह 'ड्रिंक' क्या होता है, यह भी उसने बताया तो मेरा माथा घूम गया—हे भगवान्! इस तरह वे शराब पीते हैं! बहुत शराबियो को मैंने नशे मे गन्दी हालत मे देखा था। मैं डर रही थी, बेचैन हो रही थी। आखिर बहुत देर बाद ड्रिंक का दौर खत्म हुआ। एक-एक करके वे अन्तरग मित्र भी अपनी-अपनी मोटरो मे बैठकर रवाना हो गए। केवल एक रह गए दिलीपकुमार राय, गृह-विभाग के अडर सेक्रेटरी। वे सबसे पहले आए थे, और सबसे पीछे गए, मैंने देखा—सीधे ढग से नहीं, दो आदमियो ने उन्हे पकडकर गाडी मे डाला। वे भी मोटर तक उनके साथ थे। जब वे लौटे तो उनका रग-ढग देखकर मैं सकते की हालत मे रह गई। उनके पाव लडखडा रहे थे, और वे हकला-हकलाकर बोल रहे थे। उनके मुह से जो शब्द निकल रहे थे, उनमे से बहुतो को मैं नहीं समझ सकी। मैं जड बनी हुई खडी उनकी

यह दशा देख रही थी। वे एकाएक मेरे ऊपर झुक गए, लगे हलकी भाषा मे प्यार-मुहब्बत की बातें करने, नौकर-चपरासियो के सामने ही। उनके मुह से तीव्र शराब की गन्ध आ रही थी, और अब मैंने पहचाना कि यह शराब की गन्ध थी—जो सदा उनके मुह से आती थी। उनकी इस अप्रत्याशित कुचेष्टा से मैं तिलमिला उठी और उनके आलिगन-पाश मे छूटकर मैंने उन्हे पीछे धकेल दिया। वे फर्श पर गिरकर अचेत हो गए।

मैं घबरा गई। रामचरन और एक नौकर ने उन्हे पलग पर लिटाया। लकडी के कुन्दे की भाति वे बेहोश पलग पर पडे हुए जोर से सास ले रहे थे। कभी कुछ अस्फुट शब्द उनके मुह से निकलते थे। पलग की पाटी पर बैठी मैं उनके सिर पर हाथ फेरती बैठी रोती रही, एकात रात्रि मे। नौकर-चाकर सब सोने चले गये। मै जागती सपने देख रही थी, बचपन के सपने, मा-बाप के लाड-प्यार के सपने, बालपने के अल्हड खेलो के सपने फिर ब्याह के और उसके बाद उनके सपने—प्यार के, दुलार के, आनन्द के और पहाड की उस ऊची चोटी पर चढकर, जहा से दुनिया छोटी दीखी थी, उसके सपने। अन्तस् की आखे सपने देख रही थी और बाहर की आखे सावन-भादो की झडी लगा रही थी। हाय, अब क्या होगा? यह रूप क्या हो गया?—मैं मूढ बनी यही सोच रही थी, रो रही थी। सोचती रही और फिर न जाने कब सो गई।

सुबह आख खुली तो देखा, वे उठ चुके थे, बाथरूम से उनके गुनगुनाने की परिचित मधुर ध्वनि आ रही थी। मैं हडबडाकर उठ बैठी। वे बाहर आए और हँसते हुए मेरी ओर बढे। मेरे दोनो हाथ अपनी मुट्ठी मे लेकर उन्होने प्रेम से कहा, "रात मेरी तबियत एकाएक खराब हो गई थी। है न, अब ठीक हू। तुमको शायद रात बहुत तकलीफ रही, ऐं? तुम्हारी आखें लाल हो रही हैं, क्या सोई नही?"

मैं रोने लगी। रोते-रोते उनके वक्ष पर जा गिरी। हाय, मैं अभागिनी रात की बात क्या कह भला! यह तो मेरे लिए प्रलय की रात थी—मेरे तो सभी सपने हवा हो गए थे। पर उनसे एक बात भी मुह से न कह न

रोती रही। उन्होने प्यार किया, मेरे सिर पर हाथ फेरा। उदारता और प्यार का भरपूर वही हाथ! वही स्पर्श! उसमे जैसे मेरे सूखे प्राण फिर से हरे होने लगे—जैसे सूखे ठूठ मे हरी कोपले निकल आई हो।

वे मुझे बाथ-रूम मे ले गए। मुह धुलाया। फिर एक प्रकार मे मुझे अक मे भरकर चाय की टेबल पर ले गए। रात के उन्माद का तो अब चिह्न-मात्र भी न था। वही पर्वत के समान महान् और प्यार के मूर्तिमान् अवतार मेरे साथ बैठे हँस-हँसकर बाते कर रहे थे। अन्तत मैं दु स्वप्न की भाति उस रात की बात भूल ही गई।

वह दिन चला गया। और दिन आए और गए। आते गए, जाते गए। बहुत आए और गए। बहुत नई बातें पुरानी हुई। पुरानी नई हुई। पर शराब एक दैत्य की भाति मेरे मानस-पटल पर चढ बैठी। कैसी भयानक चीज है यह शराब! क्यो पीते हैं भला ये इसे? बहुत मन को रोका और आखिर एक दिन मैंने कह ही दिया, "क्यो पीते हो तुम इस ज़हर को?"

वे हँसे। टाल गए। टालते ही गए। परन्तु अतत सवाल-जवाब, हुज्जत बढी तो वे तिनक गए। उन्होंने कहा, "ऐसी वाहियात औरत हो तुम! हर बात का जवाब तलब करती हो। मैं नही पसन्द करता ये सब बाते!"

बस, जैसे आधी का एक बवडर आया और उस पहाड की चोटी पर से मुझे नीचे धकेल गया। अभी तक इतना साफ कलाम मैंने उनके मुह से नही सुना था। वे भी शायद यह 'फील' करने लगे। नर्म होकर बोले, "सोसाइटी मे यह सब कहना पडता है डार्लिंग, तुम इन बातो का सोच-विचार न किया करो। इसके सिवाय इससे मेरी सेहत भी ठीक रहती है। आफिस मे मुझे कितना काम करना पडता है, कितनी जिम्मेवारिया मेरे सिर पर हैं। जरा-सा शुगल न करू तो बस मर ही मिटू।"

ये शायद ठीक ही कहते हैं, यह सोचकर मैं चुप हो गई। पर मेरे मन मे जो चोर बैठा सो बैठा। रात को जब वे क्लब से आते तो मैं सतर्क दृष्टि से उनकी प्रत्येक हरकत को देखती। मेरी सदा की प्रसन्नता गायब हो जाती और मेरा मन खीझ से भर जाता। वे भी यह बात समझ गए और

मुझसे खिचे-खिचे रहने लगे। और यो मिश्री मे वास की फास का प्रवेश हो गया। मेरा सोने का महल मलिन होने लगा। मेरा उल्लास बुझने लगा। मे खोई-खोई-सी रहने लगी। मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा—जैसे यह कम्बख्त शराव एक व्यवधान वनकर हमारे वीच आ गई है। मै चाहती थी कि मैं उनसे झगडा न करू। पर अव वे और देर से घर लौटने लगे। कभी-कभी आधी-आधी रात तक मुझे खिडकी मे मुह दिए वैठे रहना पडता था, उनके लिए खाना रक्खे भूखी वैठी रहती थी। अव उनके मन मे मेरे लिए वह सहानुभूति न थी। वे आते और मैं उदास और ठडे दिल से खाने को कहती तो वे रूखे स्वर मे कहते, 'मैने तुमसे कई वार कहा है, मेरी प्रतीक्षा मत किया करो, खा-पी लिया करो। मैं वहा खा लेता हू। पर तुम सुनती ही नही।' भला कैसे सुनू मैं! मर्द वन जाऊ? औरत का स्वभाव ही छोड दू!

वे यह कहकर सोने के कमरे मे चले जाते और मैं विना ही खाए-पिए एक ओर पड रहती। आए-दिन यही होता और कभी-कभी दो-दो दिन वात करने की नौवत न आती। आखिर मैं करू क्या? जाऊ भी कहा? सोचू भी क्या? जीवन तो वध चुका। हृदय परकैच हो चुका। अन्त मे हँसी और आसुओ का गठवन्धन हो गया। मैं हँसती भी, रोती भी। प्यार का दर्द अव मेरी वीमारी वन गया। पर इसका इलाज क्या था?

फिर दूसरा वर्थ-डे आया, और वे पाच सौ रुपये मेरे हाथो मे थमाकर चल दिए। मैंने कहा, "सुनो!" वे रुके, कहा, "क्या?"

"तुम्हारे हाथ जोडती हू। इस वार यहा ड्रिंक मत करना।"

"अच्छा!" कहकर वे तेजी से चल दिए। उनका इस तरह जाना, 'अच्छा' कहना मुझे कुछ भाया नही—न जाने क्यो किसी अज्ञात भय ने मेरा मन मसोस दिया। मैं वाजार गई, सव सामान लाई। मन मे उछाह भी था, और भय भी था। न जाने आज की रात कैसी वीतेगी? पिछले साल की सव वाते याद आ रही थी, और मेरा कलेजा काप रहा था। फिर भी मैं यन्त्रवत् सव तैयारी कर रही थी।

मेहमान आने लगे पर उनका कही पता न था। मेरे पैरो के नीचे से धरती खिसक रही थी। लोग हँस-हँसकर बधाइया दे रहे थे, चुहल कर रहे थे। मुझे उनके साथ हँसना पडता था, पर दिल मेरा रो रहा था। यह तो बिना दूल्हे की बरात थी। बडी देर मे आए उनके अन्तरग मित्र दिलीपकुमार। आगे बढकर उन्होंने सब मेहमानो को सम्बोधित करके कहा, "बन्धुओ और बहिनो, बडे खेद की बात है कि एक अत्यावश्यक सरकारी काम मे व्यस्त रहने के कारण दत्त साहब इस समय हमारे बीच उपस्थित नही हो सकते हैं। उन्होने क्षमा मागी है और अपने प्रतिनिधिस्वरूप मुझे भेजा है। खूब खाइए-पीजिए मित्रो।"

इतना कहकर वे मेरे पास आए। मुझे तो काठ मार गया। मैंने कहा, "क्या हुआ ?"

"कुछ बात नही भाभी, उन्हे बहुत ज़रूरी काम निकल आया। आओ, अब हम लोग मेहमानो का मनोरजन करे, जिससे उन्हे भाई साहब की गैरहाज़िरी अखरे नही।" और वे तेज़ी से भीड मे घुसकर लोगो की आवभगत मे लग गए। निरुपाय हो छाती पर पत्थर रखकर मुझे भी यह करना पडा। पर मैं ऐसा अनुभव कर रही थी जैसे मेरे शरीर का सारा रक्त निचुड गया हो, और मैं मर रही होऊ।

जैसे-तैसे मेहमान विदा हुए। सूने घर मे रह गए हम दो—दिलीपकुमार और मै। उन्होंने मेरे निकट आकर कहा, "यह क्या भाभी, तुम्हारा तो चेहरा ऐसा हो रहा है, जैसे महीनो की बीमार हो। क्या तबियत खराब है तुम्हारी।"

"नहीं, मै ठीक हू, पर वे कब तक लौटेंगे ?"

"उन्होने कहा था कि छुट्टी होते ही मै आजाऊगा। अब जब तक भाई साहब नहीं आ जाते, मै यहा हू। आप चिन्ता न कीजिए। लेकिन आपने तो कुछ खाया-पीया ही नही है। इतने लोग खा-पी गए, जो मालिक है वही रह गया। तो कुछ खा लीजिए न—मै लाता हू।" पर मैने उन्हे रोककर कहा, "नहीं, मै कुछ न खाऊगी, आप बैठिए।" मैंने एक कुर्सी की ओर इशारा

किया। कुर्सी पर बैठते हुए उन्होने कहा, "भाभी, खाया-पीया तो मैंने भी कुछ नही। भाई साहब के बर्थ-डे पर हमी दोनो घाटे मे रहे।" वे खिल-खिलाकर हँस पडे। मैंने उठते हुए कहा, "आप खाइए न, मैं लाती हू।"

पर उन्होने हठ ठानी—जब तक मैं नही खाती वे न खाएगे। लाचार मुझे भी बैठना पडा। कुछ खाया, पर मेरा मन कहा-कहा भटक रहा था! कहा हैं वे? ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे मेरे प्राण उनमे उलझे हुए हो और वे उन्हे निर्दयता से दूर बैठे खीच रहे हो। मैं चाहती थी कि ये दिलीप-कुमार यहा से चले जाए और मैं जी भरकर रोऊ।

पर वे नही गए। मेरे कहने पर भी कहने लगे, "आपको अकेला छोड-कर कैसे जा सकता हू, बडी खराब बात है—इतनी देर हो गई, अभी नहीं आए।"

हजारो प्रश्न मेरा मन कर रहा था, पर मेरी वाणी जड थी। मैंने अपनी सारी शक्ति अपने आसुओ को रोकने मे लगा दी थी।

रामचरण पत्थर की मूर्ति की भाति बराडे मे चुपचाप खडा था। सब नौकर-चाकर जाकर सो रहे थे, पर यह एकनिष्ठ ब्राह्मण सेवक चुप-चाप खडा था—कदाचित् मेरी वेदना का मूक भागीदार। उसकी उपस्थिति से मुझे ढाढस वध रहा था। अन्तत वे आए, मगर बदहोश होकर, और रामचरण ने उन्हे उठाकर पलग पर डाल दिया। मेरा मुह ठीकरे के समान काला हो गया। मैंने बाहर आ, दिलीपकुमार से कहा, "अब आप भी जाइए," और मैं उमडते आसुओ के वेग को न सभाल सकने के कारण भागकर अपने शयनगृह मे घुस गई। न जाने कितना रोई। थकावट ने मेरा उपकार किया, मैं सो गई।

और फिर साधारण प्रभात था। वे प्रसन्न और स्वस्थ चाय पर बैठे थे। मैं उनके सामने आना नही चाहती थी, पर उन्होंने बुला भेजा। मैं आकर चुपचाप बैठ गई। केतली से प्याले मे चाय उडेलते हुए उन्होने कहा, "कहो, कैसा रहा तुम्हारा कल का जगना? सब ठीक-ठाक रहा न?"

मैंने जवाब नही दिया। उनकी बात मे कितना ग्रधिक व्यग्य था

और कितना सहानुभूति का—यह मैं न जान सकी। परन्तु प्यार की तो एक बूंद भी नहीं है, यह अवश्य जान गई। वह रात तो गत वर्ष के समान थी, पर वह प्रभात वैसा न था। मुझे चुप देखकर उन्होंने चाय की चुस्की लेते-लेते कहा

"चुप क्यों हो? क्या नाराज़ हो?"

"क्या मुझे आपसे नाराज़ होने का भी अधिकार है?" मैंने कहा।

"क्यों नहीं! पर मेरा कसूर पहले साबित करना होगा।"

"आपका कसूर? क्या एक औरत मर्द के कसूर पर भी विचार कर सकती है?"

"ज़रूर कर सकती है। यह तो स्त्री-पुरुष की समानता का युग है।"

"आप मानते हैं कि स्त्री-पुरुष समान हैं?"

"ज़रूर मानता हूं।"

"खैर, तो बताइए, कल आपने मेरे साथ अन्याय नहीं किया? इतने मेहमान आए, फिर आप ही का बर्थ डे, और आप गायब! कौन-सा काम था भला, सुनूं तो?"

"क्या तुम्हें मेरे उपस्थित न होने का कारण नहीं ज्ञात हुआ?"

"हुआ—जब आपको उस हालत में घर आते देखा।"

"तो बस, यह मैंने तुम्हारी आज्ञा का पालन किया।"

"मेरी आज्ञा का?"

"भूल गईं तुम, तुमने कहा था—'आज यहां ड्रिंक न करना।' "

"सो तुमने और कहीं जाकर किया!"

"बिलकुल ठीक! यहां तुमने अपनी तफरीह की। वहां मैंने अपने मित्रों का अनुरोध-पालन किया।"

"लेकिन मेरा मतलब तो यह था कि आप ड्रिंक करें ही नहीं।"

"यह तो बेमतलब का मतलब है। हम यदि परस्पर एक-दूसरे के रोज़-रोज़ के कामों में बात-बात पर प्रतिबन्ध लगाते रहें तो हमारा मिलकर साथ रहना दूभर हो जाएगा।" इतना कहकर उन्होंने एक विरक्ति का

भाव अपने होठो पर प्रकट किया और चाय का कप एक ओर रख, अखबार उठा लिया।

मैं उठकर चली आई। नारी-जीवन की निरर्थकता मैं समझ गई। क्या पुरुष को भी नारी नियन्त्रण मे रख सकती है? ऐसा कहना तो पहाड से सिर टकराना है। कितना बडा ससार है पुरुषो का और कितने बडे व्यापक जीवन पर दृष्टिकोण है उनका! उसकी समता हम घर की चहारदीवारी मे रहकर भला कहा तक कर सकती हैं?

अब मैं रोती भी कहा तक? मैंने सब किया। समझौता किया उनसे—"पीते ही हो तो—घर मे बैठकर पिओ। जैसे मेरे आने से पहले पीते थे।" आधी-आधी रात तक घर से बाहर रहना और फिर अर्द्धमूर्छित अवस्था मे घर लौटना—इसमे क्या सार है भला! आखिर मेरा भी तो एक ससार है जो उन्ही मे सीमित है। आफिस के समय पर तो मेरा चारा नहीं—पर उसके बाद का समय तो मेरा ही है, जिसके सहारे मैं जीती हू, मेरा नारी-शरीर ज़िन्दा रहता है।

और वे घर मे पीने लगे। मैं भी सब-कुछ सह गई। इसी समय जन्म हुआ प्रद्युम्न का। बहुत खुश हुए वे। मैने समझा, अब यह मेरी दुबारा सुहाग-रात आई है—पर धीरे-धीरे सब कुछ पुराना होता गया। क्लब तो वे अवश्य ही जाते थे, पर जल्दी आ जाते थे। इतना सहारा था। फिर प्रद्युम्न को पाकर मैं उसी मे सिमट गई थी—एक नया आधार मिला था। शराब का पीना अब मुझे खलता न था। तीसरा जन्म-दिन आया और फिर चौथा। पर उनकी हाज़िरी उस दिन न हुई। मेरा रोना-खीजना सभी बेकार गया—उस दिन तो वे अवश्य ही बाहर ही पीते थे और मदहोश होकर आधी रात के बाद घर लौटते थे।

अब इस बार मैंने एक ठान ठानी थी। तैयारी मैंने सब की थी, पर निमन्त्रण मैंने किसी को नहीं दिया। घर दीपमालिकाओ से सजा हुआ था और टेबलो पर विविध पक्वान सजे थे—पर महमान एक भी न था। मैं अकेली ही घर मे थी। सब नौकरो को भी मैंने विदा कर दिया था। पर

रामचरण नही गया था। वह मेरी सेवा मे हाज़िर था। प्रद्युम्न अब तीसरे बरस मे था। उसे मैंने खिला-पिलाकर सुला दिया था। मैं शात बैठी उस दीपावली से आलोकित घर मे कभी-कभी आकाश मे बिखरे तारो को देख लेती थी। दिलीपकुमार आए। आते ही कहा, "यह क्या ? क्या आज कोई मेहमान आए ही नही ?"

"ऐसा नही ! आप तो आ गए है।" मैंने एक फीकी मुस्कान होठो पर लाकर कहा।

"लेकिन—लेकिन " उन्होने मेरे मुह की ओर देखकर अपना वाक्य अधूरा ही रखा। मैंने कहा, "आप अपने मित्र का क्या सदेश लाए है, कहिए।"

"भाई साहब आए ही नही अभी ? बडी खराब बात है। लेकिन "

"लेकिन क्या, कहिए न ?"

"लेकिन यह तो बडी खराब बात है।"

"उनकी गैरहाजिरी मे औरो का आना और भी खराब बात होती।"

'शायद, पर भाभी, क्या आपने निमन्त्रण भेजा ही नही इस बार ?"

"क्या आपको निमन्त्रण मिला ?"

"नही। पर मेरी बात छोडिए। लेकिन "

मुझे हँसी आ गई, उस दु ख मे भी। मैंने कहा, "खैर, लेकिन को छोडिए, सबके हिस्से का आप ही खाइए-पीजिए।"

"नही-नही, मै जाता हू। भाई साहब को ले आता हू किन्तु आप ?"

'मेरे विषय मे आप क्या कहते है ?"

"आपने भाभी, न साडी बदली न बाल बनाए।"

"मुझे इसका ध्यान ही नही रहा।"

"तो खैर, अब कपडे बदल डालिए चटपट, तब तक मैं भाई साहब को लिये आता हू। बडी खराब बात है।"

वे उठकर जाने लगे। मैंने ज़रा कडे स्वर मे कहा

"नही, कही जाने की ज़रूरत नही है। आप यही बैठ जाइए और

मुझसे बातें कीजिए।"

"कैसी बातें ?"

"मीठी-मीठी बातें—जैसी मर्द औरतों से किया करते हैं।"

"लेकिन "

"फिर लेकिन ? लेकिन आप बात कीजिए।"

दिलीपकुमार हँस पड़े। उन्होंने कहा, "तो भाभी, इसी शर्त पर रुक सकता हूं—आप साड़ी बदल लें और बाल बना लें।"

एक हिंस्र प्रवृत्ति ने अकस्मात् ही मेरी चेतना को अशान्त कर दिया। और मैंने तुरन्त ड्रेसिंगरूम में जाकर नई साड़ी पहनी, बालों का जूड़ा बांधा, होंठों पर राग-रंजन किया, नेत्रों में काजल दिया। और अब मैं स्वयं हैरान थी, कोई आसुरी प्रवृत्ति कहां से आकर मुझे शृंगारित कर रही थी। शृंगार करके ज्योंही मैं दिलीपकुमार के सामने पहुंची, वे देखकर भौंचक रह गए। एकदम जड़—अविचल, एकटक मुझे देखते रहे। और मैं भी भीतर-बाहर से पत्थर बनी खड़ी रही—निश्चल, निष्कंप, निस्पंद ! दिलीपकुमार के मुंह से बात न फूटी। धीरे-धीरे उनकी आंखें नीचे को झुक गईं।

इसी समय गाड़ी का हॉर्न बजा। वे आ रहे थे। इस बार होश-हवास में थे। मगर नशे में झूम रहे थे। उन्होंने एक नज़र मेरी ओर देखा। दोनों हाथ फैलाकर डार्लिंग कहकर मेरी ओर बढ़े। राय की उपस्थिति में उनकी इस चेष्टा से मैं शरमा गई। मैं पीछे हट गई। तभी उनकी नज़र दिलीपकुमार राय के ऊपर पड़ी। 'हल्लो राय, तुम भी हो। गुड, गुड, लेकिन और सब कहां हैं ?" उन्होंने अपने चारों ओर नज़र घुमाई। सजा हुआ टेबल, चमचमाती रोशनी। उन्होंने कहा, "मामला क्या है ? मामला "
वे एक कुर्सी पर बैठ गए।

मैं जड़ बनी खड़ी रही। दिलीपकुमार उनके पास बैठ गए। वे उनके साथ अस्तव्यस्त बात करने लगे। ग्लानि और खीझ से मेरा मन कैसा तो हो गया। मैंने दिलीपकुमार से संकेत से कहा, 'इन्हें ले जाकर सुला दो।"

और तब दिलीपकुमार ने भी अभिप्राय समझ उन्हे सोने की सलाह दी। वस्त्र उतारते-उतारते भी वे बडबडा रहे थे। अन्तत वे सो गए। दिलीप-कुमार एकदम मेरे निकट आ गए। उनका गर्म श्वास मेरे कपोलो पर टकराने लगा, उनका वक्ष मुझे छू गया। उन्होने भर्राए कण्ठ से कहा, "जाता हू।"

और वे चले गए।

# दिलीपकुमार राय

पहली बार जिस दिन मैंने रेखा को देखा—उसी क्षण मैंने समझ लिया वह मेरी है, मेरे लिए है। विवाह ज़रूर उसका दत्त के साथ हुआ है। दत्त उसका पति है—पर मर्द उसका मैं हू। आप जिस चरित्र की बात कहते हैं, मैं उसका कतई कायल नही हू। इस सम्बन्ध मे मेरे अपने अलग विचार हैं। मुझे इस बात की परवाह नही है कि मेरे विचारो का ताल-मेल दूसरो के विचारो से होता है या नहीं। मैं अपने ही विचारो को ठीक समझता हू। मैं जिस विभाग मे नौकर हू उसका ठीक-ठीक काम परिश्रम से करता हू। मेरे ऊपर काम की जिम्मेदारी भी है और परिश्रम भी मुझे करना पडता है। दोनो ही बातो को मैं ठीक-ठीक समझता हू, ठीक-ठीक उन्हे अंजाम देता हू। बिला शक गर्ज़मन्दो से मैं रिश्वतें लेता हू, उनके काम भी कर देता हू। ऐसे काम आगे-पीछे होते ही हैं। मैं गर्ज़मन्द लोगो की इच्छा और आवश्यकता के अनुसार कुछ पहले कर देता हू, कुछ बाते जान लेने मे उन्हे सुविधाए दे देता हू—इससे मेरे आफिस की कोई हानि नही होती। इसका नज़राना मै गर्ज़मन्द लोगो से लेता हू। नियम-कायदो की अपेक्षा मैं आदमी को महत्त्व देता हू। नियम-कायदो को तोड-कर मैं आदमियो की सहायता करता हू। मेरी नज़र मे यह आदमी की सेवा है। बस, बात इतनी ही है कि इस सेवा के बदले मे उनसे नज़राना लेता हू, मुफ्त उनका काम नही करता। इसे लोग 'रिश्वत' कहते है। मै ऐसा नही समझता। वे खुशी से देते है। मै खुशी से लेता हू। सब लोग कहते है मनुष्य को त्याग करना चाहिए। मैं भी त्याग के महत्त्व को

समझता हू, परन्तु त्यागने की वस्तु को ही त्यागता हू, ग्रहण करने की वस्तु का ग्रहण करता हू। धन-दौलत, रुपया-पैसा त्यागने की नही, ग्रहण करने की वस्तु है। सो मैं उसे ग्रहण करता हू। वह मेरे काम आता है। उससे मैं अपनी खुशिया खरीदता हू। मैं जानता हू, दुनिया बडी टेढी है। इसमे जलेबी-जैसे बडे दाव-पेच है। उनमे फसकर आदमी की खुशी हवा हो जाती है, वह परेशानियो मे, मुश्किलो मे फस जाता है। पर मैं यह भी जानता हू कि आदमी की सबसे बडी दौलत उसके दिल की खुशी है। वह आदमी को अकस्मात् ही भाग्य से मिल जाती है, यह मैं नही मानता। मैं तो हर वक्त उसकी ताक मे रहता हू, जहा और जैसे मिले मैं उसे प्राप्त कर लेता हू। पर बहुधा मुझे वह खरीदनी पडती है। खरीदने के लिए रुपया बहुत आवश्यक और कीमती चीज है, इसलिए मैं रुपये को बहुत प्यार करता हू और उसकी प्राप्ति का कोई अवसर नही चूकता हू। हा, यह जरूर देख लेता हूँ कि कोई खतरा या उलझन न सामने आ जाए। अपनी खुशिया खरीदने के लिए मैं रुपया लेता हू। यदि उसमे खुशी ही खतरे मे पड जाए तो मैं उसे रुपये को छूता नही हू। इस प्रकार रुपये-पैसे का लेन-देन मैं पूरी सावधानी और समझदारी से करता हू।

अभी मैं जवान हू और मर्द हू। तन्दुरुस्त हू। तबीयत भी रखता हू और बुद्धि भी। आफिस मे बहुत बुद्धि खर्च करनी पडती है। उसमे मुझे कुछ भी लुत्फ हासिल नही होता। पर वह नौकरी है। उससे रुपया भी मिलता है, इज्जत भी है। उसी से समाज मे मेरा एक स्थान भी है। मैं सुप्रतिष्ठित हू, इसी से वहा हाड तोडकर परिश्रम भी करता हू, बुद्धि भी खर्च करता हू। पर सबकी सब नही। बुद्धि का एक भाग अपने लिए बचाकर रखता हू, उसे मैं अपनी खुशी खरीदने मे खर्च करता हू।

औरत मर्द की सबसे बडी खुशी का माध्यम है। एक तन्दुरुस्त जवान मर्द के लिए औरत एक पुष्टिकर आहार है—शारीरिक भी, मानसिक भी। मर्द यदि औरत को ठीक-ठीक अपने मे हज़म कर लेता है तो फिर उसका जीवन आनन्द और सौन्दर्य से भर जाता है, उसका जीवन हरा-भरा रहता

है। उसके मन के हौसले बढ जाते हैं और शरीर मे शक्ति का ज्वार आ जाता है। इसी से औरत की मेरी नजर मे बहुत कीमत है। मैं उसे मर्द की सबसे बढकर दौलत समझता हू, और अपनी पसन्द की औरत को खरीद लेने का कोई मौका चूकता नही हू। कीमत चुकाने मे कजूसी करता नही हू। पर मुश्किल यह है कि अच्छी औरत का मिलना मुश्किल है। विवाह के बोझ ने औरत को चकनाचूर कर दिया है। मेरा सम्बन्ध विवाहिता औरतो से भी है, अविवाहिताओ से भी है। जो विवाहिता हैं वे विवाह से परेशान है। जो अविवाहिता हैं वे विवाह के लिए परेशान हैं। विवाह जैसे औरत के लिए एक मजबूरी बन गई है। विवाह होने से औरत की सार्थकता है—ऐसा सब मानते है। पर मैं तो यह देखता हू कि विवाह होते ही औरत खत्म हो जाती है। आप लोग, खासकर महिलाए, नाराज़ हो जाएगी मेरी बात सुनकर—पर मेरी खुली राय है कि विवाह होने पर औरत गधी हो जाती है। विवाह होते ही पहले उसे पति का, फिर उसकी गृहस्थी का और उसके बाद उसके बच्चो का बोझ ढोने मे ही अपनी सब जिन्दगी खत्म कर देनी पडती है। इमी काम मे उसकी समूची शारीरिक और मानसिक शक्ति खर्च हो जाती है। वह किसी काम की चीज नही रह जाती। उसका सब जादू खत्म हो जाता है। और वह एक दयनीय जानवर की भाति अपना शेष जीवन व्यतीत करती है, जहा उसका अपना कही कुछ नही होता। वह पति नामधारी एक स्वेच्छाचारी व्यक्ति की दुम बन जाती है। राई-रत्ती अपना समूचा रस, शृगार-आकर्षण और जादू वह उसी के चारो ओर बखेरते-बखेरते खोखली हो जाती है। और तब आप देखिए, वह दुनिया की सबसे ज्यादा भद्दी और निकम्मी चीज रह जाती है कि जिसके मर जाने का अफसोस एक पालतू जानवर से अधिक नही होता। बडी कडवी और अट-पटी लग रही होगी मेरी ये बाते आपको। पर यह मेरी निजी राय है। मेरे अपने विचार हैं। क्या ज़रूरी है कि आप इनसे सहमत हो, इन्हे पसन्द करे। अच्छा तो यही है कि आप इन्हे पढें ही नही।

रेखा की बात कहता हू। वह एक औरत है, लाखो मे एक। उसका

वदन, उछलता यौवन, प्यासी आखे, और दान को उतावले होठ। चम्पे की कली के समान कमनीय उगलिया, एडी तक लटकती घुघराली लटे, चादी-सा उज्ज्वल माथा। अनार की पक्ति के समान दात और चादनी-सा हास्य। वाह, इसे कहते हैं औरत, जिसे देखते ही आखो मे नशा छा जाता है! अभी तक मैंने उसे छुआ नही, पर फूलो के ढेर के समान वह कोमल है। जब वह बोलती है, रुनक-झुनुक घुघरू बज उठते हैं। बात-बात मे उसका चेहरा रगीन हो जाता है। आखें चमकने लगती है। प्यार का एक झरना है जो उसकी हर अदा से झर रहा है, उसे देखे बिना कैसे रहा जा सकता है भला? और उसे देखकर फिर और किसे देखने का मन हो सकता है!

दत्त मेरा दोस्त है, पुराना दोस्त। भला आदमी है, पर इससे क्या? क्या इसी से वह रेखा-जैसी औरत का पति होने योग्य माना जा सकता है? रेखा से उसका ब्याह हुआ है। दूसरे शब्दो मे, रेखा को उसके मा-बाप ने दत्त की पतलून की जेब मे डाल दिया है। वह एक रूमाल की भाति उसका इस्तेमाल करता है, जब-तब मुह का पसीना, धूल-गर्द पोछ लेता है। उसे पाकर रेखा को क्या मिल सकता है भला!

दत्त साड की भाति तन्दुरुस्त है, प्रतिष्ठित और विचारशील है। शायद रेखा को प्यार भी करता है। सबके ऊपर वह उसका विवाहित पति है। पर इसी से क्या वह रेखा का सब-कुछ हो गया? अच्छा मान लिया कि वह रेखा को प्यार करता है, पर क्या यह भी माना जा सकता है कि वह रेखा के प्यार का आनन्द भी लेने की योग्यता रखता है? मैंने ऐसे कुछ पति देखे है जो अपनी पत्नियो को थोडा-बहुत प्यार करते है, पर आज तक ऐसा एक भी पति नही देखा जो अपनी पत्नी के प्यार का पूरा आनन्द ले सकता हो। इन मूढ पतियो को, जो अपनी पत्नियो को अपनी ज़िन्दा दौलत समझते है और हिफाज़त से घरो मे दबोच रखते है, भला औरत का प्यार कैसे मिल सकता है? उन्हे तो औरत की खीझ और विरक्ति ही पल्ले पडेगी। सभी जगह मैंने यही देखा है।

रेखा के प्यार का आदि-अन्त नही है। पर वह उसे सजोए किसी को

अर्पण करने के लिए उत्सुक खडी है, वह समझती है कि दत्त—उसका पति ही उसका हकदार है। यह उसकी अपनी समझ नही है, उस समाज की परम्परागत समझ है जिसमे वह पली है, वह चाहती है कि एक बार उसका वह पति उसके प्यार पर नज़र डाले और वह उसे उसपर न्योछावर करके अपना नारी-जीवन धन्य करे। पर दत्त को उस ओर देखने की अभी फुर्सत ही नही मिली है। यह मै आज पाच साल से देखता चला आ रहा हू। शायद प्यार की परख ही उसे नही है। वह एक बैल है जो अपने आफिस मे जुटा रहता है। रेखा उसकी पत्नी है, उसके घर ही चहारदीवारी मे सुरक्षित है—उसका शरीर उसके लिए रिज़र्व है, बस, उसके लिए यही काफी है। वह गधा यह नही जानता कि रेखा पत्नी ही नही, एक औरत भी है। पत्नी और औरत मे क्या अन्तर है, इसे शायद समझने का शऊर भी दत्त को नही है। औरत की भूख भी उस गधे मे नही है। मैंने तो नही सुना कभी कही उसने किसी औरत को पसन्द किया हो, आख उठाकर देखा हो, औरत मे आनन्द की अनुभूति की हो। अपने आफिस मे वह एक परिश्रमी साड है, और घर मे एक मूर्ख असावधान पति। फिर रेखा उससे खुश कैसे रह सकती है! कब तक वह अपने छकडा-भरे पाप को लिये बैठी रहेगी, इस प्रतीक्षा मे कि वह उसकी ओर देखे और वह उसे उसको समर्पित करे। पर वह कर भी क्या सकती है! मैंने उसे रोते देखा है। कैसे अफसोस की बात है! वे प्यार से लबालब आखे आसुओ से तर हो, चुम्बन के अभिलाषी होठ घृणा से सिकुड जाए। उमगो से भरा हुआ दिल बैठ जाय! और इसी उम्र मे। भई, मैं तो हमेशा से यही कहता रहा हू कि यह विवाह-जैसी नामुराद चीज़ दिलो को मसोस डालने के लिए ही है। इससे किस दिल ने कुछ पाया!

पाच साल हो गए, पर आज तक रेखा ने मेरी ओर आख नही उठाई थी, जिसका मैं इन्तजार सदैव करता रहा हू। बहुत औरतो के प्यार का आनन्द मैंने प्राप्त किया, पर इतनी प्रतीक्षा किसी की नही करनी पडी। मै जब उसे भाभी कहता—तो उसके जवाब मे जो कुछ उसकी आखो मे पाता

चाहता, नही पाता था। आज पाच साल बाद मेरी वह अभिलाषा पूरी हुई। आज उसकी आखो मे मैंने वह चीज देखी जिसकी मुझे प्रतीक्षा थी। अब तो रेखा मेरी ही है। ओफ, कितने आनन्द की बात है! खुशी से मेरे खून की एक-एक बूद नाच रही है!

मैं भी पीता हू, पर दत्त की भाति गधा बनकर नही। रेखा के लिए वह मूर्ख शराब नही छोड सका। अब रेखा गई उसके हाथ से। लोग समझते हैं, विवाह करते ही औरत आ गई हमारे हाथ मे। पर मैं जानता हू—सौ मे एक भी पति औरत को अपना नही सका। सामाजिक बन्धन बहुत पुराने हैं, बहुत मज़बूत है। उन्होने औरत को पत्नी बनाकर, पति के साथ खूब कसकर बाध दिया है। छूट नही सकती वह उससे। पर इससे कुछ लाभ थोडे ही हुआ। वह गले का हार न होकर सिल हो गई, जो गले मे बधी है, और जिसका असह्य भार पति को जिन्दगी-भर उठाना ही होगा। इसी से लोग गृहस्थी को एक जजाल कहते है। उसमे फसकर छटपटाते है, या मूड मुडाकर भाग खडे होते हैं। काश, ये औरत को पहचान पाते, औरत का प्यार पा सकते, और ज़िन्दगी का लुत्फ उठाते!

समाज ने औरत के तन को ही विवाह-बन्धन मे बाधा, मन को नहीं। पर ऐसा बाधा कि कसाइयो को भी मात कर दिया। धर्म कहकर अधर्म की हद कर दी। मुर्दे के साथ ज़िन्दा औरत को फूक दिया। शताब्दियो तक फूकते रहे, और उसे सती कहकर सराहते रहे। पर इससे क्या औरत का मन जीता गया? औरत, जो दुनिया की एक नियामत है, जिसकी हस्ती से दुनिया रगीन बन जाती है—एक जाने-बवाल बन गई। कितने महात्माओ ने औरत को विष की बेल कहा, उसे त्याग देने की सलाह दी, कितने सन्तो ने स्त्री-सम्पर्क को एक पाप बताया, परन्तु अफसोस, उस सचाई को कोई न परख सका जो प्रकृति ने हमारे सामने रख दी थी। हमने औरत को अपने समाज की छाती का पत्थर बनाकर रखा, उसे आदमी के गले का हार न बना सके।

कहते है, श्रीकृष्ण के सोलह हजार रानिया थी। पर वे सब अकेली

राधा को न पा सकी। राधा सबसे ऊपर सबसे आगे रही—कृष्ण से भी ऊपर। कौन थी वह राधा ? कृष्ण की पत्नी नही थी। कृष्ण उसके पति न थे, सखा थे, और राधा थी सखी। यह सख्य-भाव कितना पनपा ! कृष्ण ने राधा का प्यार पाने के लिए अपनी आखे राधा के तलवो मे बिछा दी, देहि मे शिरसि पदपल्लवमुदारम्। कौन पति अपनी पत्नी के तलवो मे आखे बिछाता है ! कौन उसके चरणो मे नतमस्तक हो उसके महावर-रजित चरण अपने मस्तक पर रख देने की उससे प्रार्थना करता है ? यह पतियो की जमात गधो की जमात है। वे पत्नियो को अपनी दाल-रोटी की भाति खाते रहते है—जब तक कि वह मर-मिट नही जाती। औरत का प्यार तो शायद ही किसी पति को मिलता होगा।

मैं भी माया का पति हू। अब से नही—बाईस बरस से। पर मैंने उसका प्यार पाया, यह मैं ठीक-ठीक नही कह सकता। शायद नही पाया। मेरा पति होना ही इसमे सबसे अधिक बाधक हुआ। अपने पतिपने की ऐंठ मे मैंने कभी उसे आत्मसमर्पण नही किया और मन की गाठ न खुलने से वह भी मुझे आत्मसमर्पण न कर सकी। अब वह मेरे बस की ही नही रही। कितना झगडा-टटा हुआ, कलह हुई, पर बात बनी कुछ नही—बिगडती चली गई। हफ्तो अब मेरी उससे बोलचाल बन्द रहती है। दूसरो को देखकर उसकी वाणी मे जो मृदुता और होठो पर हँसी आती है, वह मुझे देखते ही वर्षा की धूप की भाति गायब हो जाती है। मैं जानता हू प्यार उसके पास बहुत है। वह एक दिलदार औरत है। काश कि वह मेरी पत्नी न होकर सखी होती, तो जीवन का लुत्फ वह भी उठाती और मैं भी। पर अभिमान और सदेह की एक दीवार, जो हम दोनो के बीच बन गई है, उससे वह अपना प्यार सडक पर तो बहाती है पर मुझे नही देती।

मै जानता हू—प्यार का भी मूल्य चुकाया जाता है। वह समझती है कि मैं उसके प्यार का मूल्य नही चुका सकता। उसका ऐसा समझना गलत भी नही है। इसके बीच मे बहुत-सी बातें है। कुछ कहने के योग्य नही है, पर एक बात तो है। सब पतियो की भाति मैं समझता हू कि एक बार

पत्नी के रूप मे उसे ग्रहण करने पर मैंने उसके समूचे प्यार का मूल्य एडवांस मे ही चुका दिया है। अब तो वह प्यार मेरी ही सपत्ति है। इसी-पर उसका विद्रोह है। मै समझता हू, विद्रोह ठीक ही है—सभी तो पति यही समझते हैं। औरत भी समझ जाती है—मेरा यह प्यार तो बिक चुका, अब इसपर मेरा अधिकार ही नही रहा। परन्तु बिक्री का दाम तो नगद कुछ मिला नही, इसीपर वह विद्रोह करती है—उसमे से प्यार चुरा-चुराकर औरो को बेचती है, और उसका जो दाम मिलता है, कम या ज्यादा, उसी से अपना काम चला लेती है।

एक बात मै और कहू, जिसे मैंने बडे ही परिश्रम से जाना है। औरत को अपने-आपसे बहुत कम प्यार होता है। वह अपने को प्यार करती ही नही, यह उसका दुर्भाग्य है। इसी से वह बात-बात पर जान देने पर उतारू हो जाती है। बहुत-सी तो जान दे ही देती है। अपने को प्यार करनेवाली औरते विरल ही मिलती है। उनकी शिक्षा-दीक्षा, सामाजिक स्थिति सब ऐसी है जो उन्हे अति क्षुद्रदृष्टि बनाए रखती है। वे न जीवन के ठीक-ठीक महत्त्व को समझ पाती है, न जीवन के सच्चे आनन्द का उन्हे भोग प्राप्त होता है। काश ! औरत को विवाह-बन्धन मे जकडकर उसे परकैंच न कर दिया होता। वह कसकर पति की दुम के साथ न बाधी गई होती। रगीन तितली की भाति वह मधु-लोलुप भौरो के साथ केवल रसपान करती, जीवन का आनन्द लेती और देती। देवी नाम सार्थक करती।

# रेखा

मेरे विवाह से पहले ही से राय की दत्त से मित्रता है। दत्त उनसे सदा खुश रहे है। जहा तक मैं जानती ह, वे दत्त के सबसे निकट के अन्तरग मित्र हैं। इसी से आरम्भ से ही मैंने उनका एक आत्मीय की भाति सत्कार किया। वे भी मुझे 'भाभी' कहते रहे। यह भाभी भी अजब रिश्ता है। ऐसा प्रतीत होता है कि भाभी मे देवरो का कुछ हिस्सा रहता है। पत्निया पति से भीत-शकित रहती हैं, पर देवर से नही। वे निस्सकोच देवरो पर अपनी फरमाइशें जडती रहती हैं और वे खुशी से उनकी पूर्ति करते हैं। पति वह गडरिया है, जो डडा मारकर भेड की भाति पत्नी को हाकता है। वह केवल शासन करता है—प्रेम-भावना प्रकट नही करता। पत्नी पर शासन करना उनका जन्मसिद्ध अधिकार है। उसकी कामचेष्टा भी मुर्गे के समान है जो एक प्रकार का बलात्कार ही है। वह कबूतर की भाति कबूतरी की खुशामद नही करता। स्त्री प्रेम की भूखी है और उनकी यह भूख कितनी तीव्र है, इसपर पति कभी विचार नही करता। पति पत्नी पर नाराज भी होता है, जवाब भी तलब करता है, अनुशासन भी रखता है। पर देवर न अनुशासन रखता है, न नाराज होता है, केवल हँसकर भाभी की सब अभिलाषाए पूर्ण करता है। यह भाभी सम्बोधन भी कितना मधुर है! फिर वह किसी सुन्दर, सभ्य और भावुक तरुण के मुख से सुन पडे तो और भी मीठा हो जाता है।

राय तरुण नही हैं। मेरे पति से उनकी उम्र कुछ अधिक है। कायदे के अनुसार वे मुझे भाभी कहने का अधिकार नही रखते। पर सुभीते के

लिए भाभी ही का रिश्ता उन्होने जोडा है—और इस भाभी के रिश्ते को निभाने के लिए उन्होने दत्त को बडा भाई मान लिया है। यद्यपि दत्त उनसे उम्र मे छोटे है। दत्त को इस नये रिश्ते से कुछ भी आपत्ति नही हुई। जब उन्होने ब्याह के बाद मुझे देखकर भाभी कहा था तो दत्त ने हँसकर कहा था, 'अच्छा रिश्ता जोडा तुमने राय, इसमे अच्छा सुभीता रहेगा। रेखा तुमसे अच्छी तरह बातचीत कर सकेगी। लेकिन अब मुझे भी तुम्हारे कान मलने का अधिकार प्राप्त हो गया है।'

दोनो मित्र इसपर खूब हँसे थे। पाच साल तक वे बराबर हमारे घर आते रहे। इस बीच उन्होने कोई अमर्यादित चेष्टा मेरे समक्ष नही की। पर उनकी आखो मे कभी-कभी एक ऐसी चमक अवश्य दीखती थी कि उसे देखकर मेरी आखे झेप जाती थी। मेरे हृदय पर एक धक्का-सा लगता था और मै वहा खडी नही रह सकती थी। पर वह चमक, वह दृष्टि बडी आकर्षक थी, बडी प्रभावशाली थी। मैं उससे डरती थी पर जब वे आते, मैं उसी चमक को एक बार फिर उनकी आखो मे देखने की अभिलाषा रखती रहती थी। और फिर मुझमे उसे आख-भर देखते रहने की हिम्मत भी हो गई।

कभी-कभी वे माया के साथ आते थे, परन्तु बहुधा अकेले। ऐसा भी हुआ कि वे रात को आए, दत्त उस समय घर पर न थे। वे बडी देर तक बैठे रहे। गपशप करते रहे। बातचीत उनकी बडी दिलचस्प होती थी। उनकी बाते सुनकर तबीयत ऊबती नही थी। कभी-कभी तो दिल मे गुद-गुदी होती थी। खास कर तब, जब बीच-बीच मे वही चमक उनकी आखो मे दीख पडती थी। अब ज्यो-ज्यो दिन बीतते जाते थे और हमारा परिचय पुराना होता जाता था, उस चमक के साथ एक हास्य उनके होठो पर और एक याचना उनकी दृष्टि मे प्रकट होने लगी थी। मै नही कह सकती कि उस हास्य और याचना को देखकर मन मे जो सिहरन उत्पन्न होती थी, वह कैसी थी—पर उसका इतना प्रभाव तो स्पष्ट ही था कि उन्हे बारम्बार देखने को मन होता था। अब अजान ही मै उनके आने पर अपने शरीर

और कपडो की व्यवस्था का ध्यान करने लगी। न जाने किस अज्ञात शक्ति से मुझे उनके आने का पता लग जाता था—और मै अपने बाल बनाने और साडियो का चुनाव करने लगती थी। और उस दिन उनके पाचवें वर्थ-डे पर, जब दत्त की गैरहाज़िरी के कारण मै मन-मलिन बैठी थी और मैंने दिन-भर के परिश्रम के बाद कपडे तक नही बदले थे, तब उन्होने मुझसे बाल बनाने और साडी बदलने का अनुरोध किया। यह अनुरोध कोरा अनुरोध ही न था, उसके साथ वही चमक उनकी आँखो मे थी, परन्तु उस चमक के साथ उनके होठो पर वह अनुगामी हास्य न था—न दृष्टि मे वह याचना थी। अपितु, उसके स्थान पर एक तीव्र पिपासा थी, जिसे देखने पर मैं सयत न रह सकी। एक आसुरी तीव्र वासना का ज्वार जैसे मेरे खून मे उमड आया। और मैंने उस क्षण ऐसे चाव से शृगार किया कि जैसा आज तक अपने जीवन मे नही किया था।

दत्त से विवाह हुए अब मुझे पाच साल बीत चुके थे, उनके लिए न जाने मैंने कितने शृगार किए, और उन्होने काव्यमयी भाषा मे उसे न जाने कितनी बार सराहा, परन्तु उन सब शृगारो मे और इसमे अन्तर था। उन सबमे सकोच था, लज्जा थी, यत्किचित् निरानन्द भी था, पर यह शृगार मेरी उद्दाम वासना का शृगार था। यह उद्दाम वासना उस एक ही क्षण मे न जाने कहा से मेरे मन मे आ बसी थी। मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा था कि जैसे मुझे बुखार चढा है, और जब नया शृगार करके मैं उनके बिल्कुल निकट, इतनी कि जितनी आज तक कभी नही गई थी, जा खडी हुई तो मैंने देखा—उनकी आखो की वह प्यास और चमक एक हिंस्र पशु की चमक मे बदल चुकी थी। उसने क्षण-भर मे मुझमे एक नशे का आलम पैदा कर दिया। मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा कि जैसे यह आदमी अभी-अभी मुझे निगल जाएगा। और मैं भी न जाने किस भाव मे अभिभूत होकर मन ही मन कह उठी—लो—निगल जाओ, खा जाओ, जो भी चाहो सो करो। उस समय उनका वक्ष मेरे वक्ष से सट रहा था और उनके दिल की धडकन मुझे ऐसी लग रही थी जैसे हज़ारो तोपे दनदना रही हो। और मै अनुभव

कर रही थी कि उन्होने मुझे अपने मे समेट लिया है।

इतने ही मे दत्त आ गए। वे नशे मे थे, पर आज अपेक्षाकृत होश हवास मे थे। राय के सामने भी और उनके जाने के बाद भी उन्होने मुझसे प्रेमालाप किया, पर उससे मुझे जरा भी खुशी न हुई, जरा भी मेरे मन मे उत्साह न जगा। काश, वे बेहोशी की हालत मे आते। और राय? ओफ, मैं क्या कहने जा रही हू? मेरी जबान टूट क्यो नही जाती!! मै मिट्टी के एक लोथडे की भाति उनके अक मे पडी रही, रात-भर। उनका अकपाश मुझे ऐसा लग रहा था जैसे किसी ने मुझे जजीरो मे कस लिया है, और जैसे मेरा दम घुट रहा है। शराब मे यदि दत्त धुत्त न होते तो मेरी उस विरक्ति को वे अवश्य ही भाप जाते। परन्तु उस दिन तो वे कुछ प्रायश्चित सा कर रहे थे, अनुताप सा कर रहे थे। प्रेम भी जता रहे थे, पर वे नही जानते, उनकी ये सब चेष्टाए मुझे असह्य सी लग रही थी। और मैं झूठमूठ सोने का बहाना बनाकर राय की उन आखो की प्यास का नजारा देख रही थी, उसका लुत्फ उठा रही थी।

सुबह जब उन्हे ज्ञात हुआ कि मैने इस बार किसी को निमन्त्रित ही नही किया तो वे बहुत बिगडे। मैने भी मुहतोड जवाब दिया। लौंडी नही हू। मोल खरीदकर नही लाई गई हू। अत्याचार कब तक सहू? अन्याय भी हो और डाट-फटकार भी! चोरी भी और सीनाजोरी भी! नही, मै बर्दाश्त नही करूगी, मैने यह ठान ली।

कबूल करती हू दत्त का प्यार थोथा प्यार नही, सच्चा प्यार है। मै स्वीकार करती हू—वे सचमुच मुझे प्यार करते है। मै यह भी कह सकती हू कि इधर-उधर दूसरी औरतो की ताक-झाक करने की उनकी आदत नही है। उनमे यदि कोई दोष है तो यही कि वे शराब पीते है, मात्रा से अधिक, और रात को देर तक घर से गैरहाजिर रहते है, मुझे अकेली उनकी प्रतीक्षा मे आखे बिछाए बैठा रहना पडता है। बहुधा मुझे रोना भी पडता था, और इससे मेरा मन उनके विरुद्ध वितृष्णा से भर गया था। और इसीलिए मेरे मन मे प्यार की [illegible] आ गया, एक दूर [illegible] रहा,

यह मैंने उसी दिन जाना।

उसके दूसरे ही दिन राय आए। अभी चिराग नही जले थे और दत्त के आने का अभी समय नही हुआ था। मैं सोफे पर पडी तडप रही थी। मेरे रक्त की प्रत्येक बूद मे राय ऊधम मचा रहे थे। राय और दत्त दोनो की मानस-मूर्तिया जैसे मुझे पाने को द्वन्द्व कर रही थी मैं दत्त को पीछे धकेल रही थी और राय मे समाती जा रही थी। कमरे मे अधेरा था, कोई नौकर-चाकर वहा न था। राय आए, झपटते हुए जैसे चीता आता है निश्शब्द, और उन्होने झपटकर मुझे अपने अक-पाश मे जकड लिया और तडातड चुम्बन पर चुम्बन मेरे होठो पर आखो पर, मस्तक पर, कपोलो पर और कन्धो पर जडने आरम्भ कर दिए। मुझे ऐसा लगा कि न जाने कब से—युग युग से, जन्म-जन्मातरो से मैं इस आक्रमण की प्रतीक्षा कर रही थी। मैं एक ऐसे सुख मे खो गई कि जिसका अपने जीवन मे मैंने आज तक अनुभव नही किया था। मेरे नेत्र बन्द हो गए और मैंने अपना आपा खो दिया।

कर रही थी कि उन्होंने मुझे अपने मे समेट लिया है।

इतने ही मे दत्त आ गए। वे नशे मे थे, पर आज अपेक्षाकृत होश-हवास मे थे। राय के सामने भी और उनके जाने के बाद भी उन्होंने मुझसे प्रेमालाप किया, पर उससे मुझे ज़रा भी खुशी न हुई, ज़रा भी मेरे मन मे उत्साह न जगा। काश, वे बेहोशी की हालत मे आते। और राय? ओफ, मैं क्या कहने जा रही हू? मेरी ज़बान टूट क्यो नही जाती!! मैं मिट्टी के एक लोथडे की भाति उनके अक मे पडी रही, रात-भर। उनका अकपाश मुझे ऐसा लग रहा था जैसे किसी ने मुझे जजीरो मे कस लिया है, और जैसे मेरा दम घुट रहा है। शराब मे यदि दत्त धुत्त न होते तो मेरी उस विरक्ति को वे अवश्य ही भाप जाते। परन्तु उस दिन तो वे कुछ प्रायश्चित-सा कर रहे थे, अनुताप-सा कर रहे थे। प्रेम भी जता रहे थे, पर वे सब बाते, उनकी वे सब चेष्टाए मुझे असह्य-सी लग रही थी। और मैं झूठमूठ सोने का बहाना बनाकर राय की उन आखो की प्यास का नज़ारा देख रही थी, उसका लुत्फ उठा रही थी।

सुबह जब उन्हे ज्ञात हुआ कि मैंने इस बार किसी को निमन्त्रित ही नही किया तो वे बहुत बिगडे। मैंने भी मुहतोड जवाब दिया। लौंडी नही हू। मोल खरीदकर नही लाई गई हू। अत्याचार कब तक सहू? अन्याय भी हो और डाट-फटकार भी! चोरी भी और सीनाज़ोरी भी! नही, मैं बर्दाश्त नही करूगी, मैंने यह ठान ली।

कबूल करती हू, दत्त का प्यार थोथा प्यार नही, सच्चा प्यार है। मैं स्वीकार करती हू—वे सचमुच मुझे प्यार करते है। मै यह भी कह सकती हू कि इधर-उधर दूसरी औरतो की ताक-झाक करने की उनकी आदत नही है। उनमे यदि कोई दोष है तो यही कि वे शराब पीते है, मात्रा से अधिक, और रात को देर तक घर से गैरहाज़िर रहते है, मुझे अकेली उनकी प्रतीक्षा मे आखें बिछाए बैठा रहना पडता है। बहुधा मुझे रोना भी पडा था, और उससे मेरा मन उनके विरुद्ध वितृष्णा से भर गया था। और उनके लिए मेरे मन मे प्यार भी खत्म हो गया, एक बूद भी न रहा,

यह मैंने उसी दिन जाना।

उसके दूसरे ही दिन राय आए। अभी चिराग नही जले थे और दत्त के आने का अभी समय नही हुआ था। मैं सोफे पर पडी तडप रही थी। मेरे रक्त की प्रत्येक बूद मे राय ऊधम मचा रहे थे। राय और दत्त दोनो की मानस-मूर्तिया जैसे मुझे पाने को द्वन्द्व कर रही थी मैं दत्त को पीछे धकेल रही थी और राय मे समाती जा रही थी। कमरे मे अधेरा था, कोई नौकर-चाकर वहा न था। राय आए, झपटते हुए जैसे चीता आता है निश्शब्द, और उन्होने झपटकर मुझे अपने अक-पाश मे जकड लिया और तडातड चुम्बन पर चुम्बन मेरे होठो पर आखो पर, मस्तक पर, कपोलो पर और कन्धो पर जडने आरम्भ कर दिए। मुझे ऐसा लगा कि न जाने कब से—युग-युग से, जन्म-जन्मातरो से मैं इस आक्रमण की प्रतीक्षा कर रही थी। मैं एक ऐसे सुख मे खो गई कि जिसका अपने जीवन मे मैंने आज तक अनुभव नही किया था। मेरे नेत्र बन्द हो गए और मैंने अपना आपा खो दिया।

# दत्त

यह हो क्या गया है रेखा को ? फूल के समान कोमल उसका आलिंगन लकडी के समान सख्त हो गया है। वह कुछ खोई-खोई-सी रहती है। उसके नेत्रो मे भी एक विचित्रता देखता हू। अब वह मुझसे आखें मिलाकर बात नही कर सकती, जैसे उसे मेरी ओर देखने का चाव ही नही रहा हो। सिर्फ नपे-तुले शब्द बोलती है और कुछ कहते-कहते जैसे कुछ भूल जाती है, घबरा जाती है, चौक पडती है। कभी-कभी अकस्मात् ही भय की एक आर्त चितवन मैं उसके नेत्रो मे देखता हू, जैसे अचानक किसी भयानक घटना को देखकर उत्पन्न हो जाया करती है। मैं तो अब कभी उसके साथ सख्त बात भी नही करता, यत्नपूर्वक उसे प्रसन्न रखने की चेष्टा करता हू। फिर भी वह मुझे देखकर डर क्यो जाती है ? पहले तो ऐसा नही होता था—मुझे देखते ही उसकी आखे कमल के समान खिल जाती थीं, अग मे फुर्ती-चुस्ती आ जाती थी, होठ अधिक लाल हो उठते थे, कभी-कभी तो फडकते-से लगते थे। ऐसा प्रतीत होता था, चुम्बन का निमन्त्रण दे रहे है। तब तो मैं उसकी ओर से असावधान ही था—इस प्रकार, मानो मेरी कीमती धरोहर, भारी रकम हिफाज़त से मेरे घर मे रखी है, उसकी चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है। इसके बाद ही मैंने अपने अन्यायाचरण पर भी विचार किया। कबूल करता हू, यह शराब ही मेरे-उसके बीच बाधा बनी। मैं समय पर घर नही आता था। मैंने कभी इस औचित्य पर ध्यान नही दिया। पर अब तो मैं बहुत ध्यान रखता हू। उसे प्रसन्न रखने के सब सम्भव उपाय करता हू, पर ऐसा प्रतीत होता है

जैसे-जैसे मैं उसे बटोरता हू, वह बिखरती है, बेकाबू होती जाती है।

क्या उसे कोई दु ख है ? बहुत बार मैंने पूछा है, पर सदैव उसने कहा—'नही'। पर उसका यह 'नही' कितना ठण्डा है कि एक शब्द के सुनते ही मेरा हृदय ठण्डा हो जाता है। बहुधा तो वह जवाब देती ही नही। उसकी हर चेष्टा से मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मेरी उपस्थिति अब उसे उतनी प्रिय नही प्रतीत होती। कभी-कभी तो असह्य-सी भी लगती। क्या बात है यह ? इसकी जड भी कुछ अवश्य है। क्या उसका मन प्रद्युम्न मे लगा है ? पति से अधिक क्या पुत्र पर उसका प्रेम केन्द्रित हुआ है ? यह तो मेरी ईर्ष्या का विषय नही होना चाहिए। पर नही, नही, ऐसी बात भी नहीं है। प्रद्युम्न को लेकर पहले वह जिस उमग से मेरे निकट आती थी, अब कहा आती है ! वह तो जैसे अब मुझे देखकर छुई-मुई-सी सिकुड जाती है, जैसे वह मेरी पत्नी नही, कोई गैर औरत है। देर से घर मे आने पर पहले वह गुस्सा करती थी, कभी मौन और कभी कहती-सुनती भी थी। उसका गुस्सा मुझे अच्छा लगता था, उसमे उसके अटपटे प्रेम का पुट था। पर अब तो वह कुछ भी नही कहती, जैसे मेरे घर मे आने-जाने से उसका कोई वास्ता ही नही रहा। उस दिन मैंने उससे पूछा कि क्या वह बीमार है, तो इसका भी उसने वही ठण्डा जवाब दे दिया, 'नही।' देख रहा हू कि मुझमे उसकी दिलचस्पी कम हो रही है।

राय के नाम से वह चौंकती है, स्थिर नही रह सकती। प्रसग छिडते ही चल देती है। क्या बात है यह ? राय से क्या उसे चिढ है ! बेचारा भला आदमी है खुशमिजाज है, मेरा पुराना दोस्त है। वह सदैव मुझे और उसे भी प्रसन्न करने की चेष्टा करता रहता है। उसने क्या रेखा को नाराज कर दिया है ? ऐसा आदमी तो वह है नहीं। इधर वह आता भी कम है, और जब आता है, प्रद्युम्न के साथ खेलता रहता है। खूब घुटती है प्रद्युम्न से उसकी। परन्तु इसमे तो रेखा के नाराज होने की कोई बात ही नहीं है।

कई दिन से मैं मन ही मन घुट रहा था। मैंने आज ठान लिया था, आज खुलकर बात करूगा। आखिर मै उसका पति हू, उसके सुख-दुख की मुझे

ही तो खबर लेनी चाहिए। और मैंने उससे कहा, "रेखा, क्या बात है कैसी हो गई हो तुम ?"

"क्यो ? क्या मैं रेखा नही रही ?" एक फीकी हँसी हँसकर उसने कहा और आखें नीची कर ली।

मैंने कहा, "सचमुच तुम वह रेखा नही हो, बहुत बदल गई हो बताओ, क्या बात है ? मुझसे नाराज हो ?"

"नही।" इतना कहकर वह जाने लगी, मैंने रोककर कहा, "ठहरो।" तो वह मुह फेरकर चुपचाप खडी हो गई, जैसे सचमुच कोई पर-स्त्री हो। क्या यह वही रेखा है जो बात-बात मे हसती थी, हँसते-हँसते जिसके गाल मे गढे पड जाते थे, जो बात मे बात निकालती थी! जब किसी बात पर ज़िद करती थी, गले मे दोनो हाथ डालकर झूल जाती थी और ज़रा-से अनुग्रह पर तडातड चुम्बन करने लगती थी। 'तुम बहुत ही अच्छे हो,' उसका यह वाक्य कितने गहरे विश्वास से निकलता था। पर अब क्या! अब तो वे सब बातें हवा हो गईं। तब उसकी याद-मात्र करके रगो मे लहू गर्म हो जाता था। दफ्तर के काम मे थकावट ही नही प्रतीत होती थी। जब घर लौटने का समय होता था तो खून की एक-एक बूंद नाचने लगती थी—किन्तु अब तो अवसाद ही अवसाद है—ठण्डा और बासी।

मैंने उठकर उसे निकट बुलाया, गोद मे बिठाकर प्यार किया। बहुत कहा, बहुत कहा, "दिल की बात कहो, दिल की घुण्डी खोलो, क्या हुआ है तुम्हे ? क्या तकलीफ है तुम्हे ? क्या चाहती हो तुम ?" किंतु सबका जवाब वही—'नही,' उसी प्रकार मुह फेरकर। ओफ, कितनी ठण्डी थी वह 'नही'—जैसे छुरी की नोक हो। गुस्सा आ गया मुझे। मन हुआ कि फेंक दू उठाकर। शायद वह भी मेरे मन की बात जान गई और आहिस्ता से मेरे अंकपाश से निकलकर चुपचाप बैठ गई, उसी भाति मुह फेरकर।

मैं बिना ही खाए-पिए आफिस चला गया। मैं कैसे बर्दाश्त करू यह सब ? आखिर मेरा दोष भी तो हो। मैं तो रेखा को दिल से प्यार करता हू। मैं इस बात पर गर्व भी कर सकता हू कि मेरे जैसा प्यार अपनी

पत्नी को सव कोई नही कर सकते। वेशक मैं कुछ लापरवाह अवश्य हू। पर हम पति-पत्नी है। दिखावे की हम लोगो को क्या जरूरत है? क्या हम अव अपने प्यार को भी नाप-तोलकर देते-लेते रहे? मानता हू—मैं ड्रिंक करता हू। पर यह मेरी पुरानी आदत है। वह इसे पसन्द नही करती, इसीसे मैं घर मे न पीकर क्लव मे पीता था। वहा दोस्त लोगो मे तफरीह करते देर हो जाती थी। पर यह कोई इतना वडा कुसूर नही कि औरत मुह फेरकर हर वात का जवाव ठण्डी 'नही' मे दे। इस 'नही' के वाद तो फिर मन मे कुछ भी नही रह जाता। मैं कमाता किसके लिए हू भला? रेखा ही के लिए न? मैं तो तन-मन से उसपर न्योछावर हू। मैंने आज तक दूसरी किसी औरत की ओर आख उठाकर भी तो नही देखा। मैं यह सव गन्दी वातें पसन्द नही करता। फिर कौन औरत है जो रेखा के चरण नख की वरावरी भी कर सकती है! मुझे रेखा पर गर्व है।

मेरे ड्रिंक पर वह इतना खीझ जाएगी, यह मैंने नही सोचा था। असल वात यह है कि मैं प्रतिवन्ध सह नही सकता। उसने तो मेरे साथ डिक्टेटर-शिप शुरू कर दी।

मैं ड्रिंक करू ही नही? मित्रो के साथ आनन्द-वार्ता न करू? खाना-पीना न करू? सवको छोड दू? अकेला उसी की गुलामी करू? यह तो प्यार से वाहर की वात है। गुस्सा आ गया मुझे। मेरे आत्मसम्मान पर चोट लगी। और मैंने ज़रा-सी सज़ा दे दी। उसने घर मे मेरा वर्थ-डे मनाया, मैंने वाहर! वहरलाल मैं अपने दोस्तो को, उनके मान को कैसे नज़रअन्दाज़ कर सकता हू! वे ड्रिंक की फर्माइश करे—मेरे वर्थ-डे पर, तो मैं कैसे इन्कार कर दू! माना शराव वुरी चीज़ है, पर वह ऊची सोसाइटी की एक अनिवार्य वस्तु हो गई है—विदेश मे मैंने यह देखा है, और समझता हू कि इसमे तफरीह भी होती है, वहुत-से काम भी निकलते है। वडे लोगो की कृपा और मित्रता प्राप्त होती है। ड्रिंक के समय ही तव छोटे-वडे का भेद मिट जाता है, और कभी-कभी वडी-वडी उलझने सुलझ जाती है। ड्रिंक करते-करते एक क्षण आता है जव हृदय हलका और स्वच्छ

प्रतीत होता है, मन उदार और भावुक होता है। उस वक्त बुद्धिमान लोग शत्रु से भी अपना काम बना ले जाते हैं। मैंने स्वय देखा है और लाभ उठाया है। मेरे वे उच्चपदस्थ जो, आफिस मे मुझे अपने सामने कुर्सी पर बैठने को भी कभी नही कहते—यद्यपि मैं स्वय भी एक उच्चपदस्थ पुरुष हू—ड्रिक के समय ऐसा दोस्ताना बर्ताव करते है कि उस वक्त मैं चाहू तो उनका सिर भी माग सकता हू और वे खुशी से दे सकते हैं।

फिर भी उसमे नुक्स है, मैं स्वीकार करता हू। कभी-कभी ज्यादती हो ही जाती है और मैं 'ओवर डोज़' हो जाता हू। पर इससे मैंने आज तक किसी का कोई नुकसान नही किया। विदेश मे मैंने देखा है, रात को पीकर एकदम बदहवास पति को लेकर जब उसके दोस्त उसके घर पहुचते हैं, तो उसकी पत्नी उसे महज़ एक विनोद ही समझती है। वह पति के मित्रो का हँसकर स्वागत करती है। और अधिक से अधिक एकाध उलाहना देकर पति को छुट्टी दे देती है। दूसर दिन उनके नये प्यार का, नये आनन्द का दिन होता है। मैंने तो नही देखा, कही कोई पत्नी केवल ड्रिक को लेकर ही महाभारत खडा कर दे। रेखा को मैं प्यार अवश्य करता हू, पर मैं उसकी गुलामी को बर्दाश्त नही कर सकता। यह रेखा की ज्यादती है, फिर भी अब तो मैं उससे डरने ही लगा। उसी दिन की बात लो, दोस्तो का भी बुरा बना, सोसाइटी मे गवार कहलाया और सबको छोडकर भाग आया। सो वह बेरुखी उसी का नतीजा है।

उस दिन मेरा बर्थ-डे था। दोस्तो ने घेर लिया। मुझे उन्हे एक काक-टेल-पार्टी देनी पडी। सदैव से देता रहा हू, पर इस बार मैंने निश्चय कर लिया था कि जल्द घर लौटूगा, और दोस्तो के मना करने पर भी मैं सबको छोड-छाडकर खिसक आया। बडी भद्दी बात थी। मैं मेजबान था, मेरा बर्थडे था और मैं ही उन्हे छोडकर भाग आया। निमन्त्रितो मे केवल दोस्त ही न थे, मुझसे ऊचे ओहदे के व्यक्ति भी थे। मुझे उनसे तबियत खराब होने का बहाना करना पडा। मन को बहुत बुरा लग रहा था, पर रेखा का ख्याल था। इस बार घर पर भी मेहमानो की आवभगत मैं करना

चाहता था , पर घर पहुचकर देखा—सब सामग्री जैसी की तैसी रखी है, पर मेहमान कोई नही है। अकेले राय थे लेकिन कुछ परेशान-से –घबराए-से । और दूसरे दिन सुबह जब मुझे ज्ञात हुआ कि रेखा ने इस बार किसीको निमन्त्रित ही नही किया था, तो मैं अपने को काबू न रख सका—बरस पडा। किन्तु भली-बुरी जो बात थी खत्म हुई , पर रेखा उसी दिन से बदल गई है। उसके सब रग-ढग कुछ-के-कुछ हो गए है। मैंने ही मनाया है उसे। मगर अब वह एक निर्जीव गुडिया-सी हो गई है जिसमे चाभी भरने से उसके हाथ-पैर तो चलते है पर प्राण उसमे नही है।

# माया

राय से मैंने लव-मैरिज की थी—अपने माता-पिता की स्वीकृति और रज़ामन्दी के विरुद्ध। पिताजी चाहते थे, किसी अच्छे-भले घर मे मुझे घुसेड-कर अपनी ज़िम्मेदारी से मुक्त हो जाए। भले घर से मतलब उनकी नज़र मे था जहा परिवार मे मधुमक्खी के छत्ते के समान बेशुमार औरत-मर्द और बच्चे भरे हुए हो, खूब रुपया हो और शानदार मकान-कोठी हो—मोटर हो। जहा शहद भी टपकता हो और मक्खिया भी डक मारती हो। एक हँस रहा हो, एक रो रहा हो, एक गुमसुम हो, एक बमकार रहा हो, एक मर रहा हो, एक जन्म ले रहा हो। इसे वे कहते थे भरा-पूरा परिवार। पर मुझे इस मधुमक्खी के छत्ते की एक मक्खी बनना स्वीकार न था। दुनिया मैंने देखी तो न थी, पर कुछ-कुछ समझी थी। जब मै एम० ए० मे पढ रही थी, तभी मेरी एक सहेली का व्याह ऐसे ही भरे-पूरे घर मे हो गया था। वह बडी अच्छी लडकी थी, निहायत खुशमिज़ाज। विनोदी स्वभाव और बाल-सुलभ सरलता की मूर्ति थी—सुन्दर भी थी और प्रतिभा सम्पन्न भी थी। बी० ए० मे वह प्रथम और मैं द्वितीय आई थी। व्याह के समय वह बहुत खुश थी। दूल्हा उसे पसन्द था। अभी हाल मे विलायत से डाक्टरेट लेकर आया था। सावला-सलौना कटीला जवान था। हाज़िरजवाब और सभ्य-शिष्ट, शीन-काफ से दुरुस्त। दूल्हा मुझे भी पसन्द आ गया था और मैंने ऐसा दूल्हा मिलने के लिए सखी को बधाई भी दी थी। पर व्याह के छ महीने बाद जब वह ससुराल से लौटकर आई तो उसके रग-ढग सब बदले हुए थे। वह सुस्त, उदास और जीवन से उकताई हुई-सी, कुछ खोई हुई-

सी हो रही थी। उसका वह उन्मुक्त हास्य, दिल खोलकर उत्साह से बात-चीत का ढग सब गायब हो चुका था। मैंने कहा, "यह क्या हुआ ? अभी जवानी तो चढी ही नही, और तू बुढिया भी हो गई।" उसने बहुत रोका अपने मन को, पर फूट पडी। उसने उस भरे-पूरे घर का बखान किया जो कलह, ईर्ष्या, द्वेष और अशान्ति का अड्डा बना हुआ था। जहा व्यक्ति की कोई मर्यादा न थी। जहा प्रत्येक स्वामी था, प्रत्येक असतुष्ट था, प्रत्येक खड्गहस्त था। उसने अपनी जिठानियो की करतूतें बताई, जो उसके रूप को ईर्ष्या से और सभ्य-शिष्ट रहन-सहन को क्रोध से देखती थी। उसके बनाव-सिंगार यहा तक कि साफ-सुथरे कपडे पहनने तक को वे वेश्यावृत्ति कहती थी। वे उसकी एकान्तप्रियता का मज़ाक उडाती। उसे घमडी और छोटे घर की कहकर तिरस्कार करती थी। सास थीं, जिनके सामने सब बहुए या तो पालतू बिल्लिया थी, या कबूतरी। उन्हे सिर्फ दरबे मे बैठकर गुटरगू करने की स्वतन्त्रता थी। सास के सिर से पके बाल उखा-डना और उसकी मुसाहिबगीरी करना उनका प्रधान कार्यक्रम था। नौकर-चाकर चोरी करते। बहुए फूहड ढग से चीज़ो की बर्बादी करती। बच्चे अव्वल दर्जे के ज़िद्दी। बच्चो को लेकर दिन मे दस बार तू-तू-मैं-मैं होती। पति घर मे न रहते थे। दूर नौकरी पर थे। सास ने बहू को उनके साथ भेजने से इन्कार कर दिया था। बडी कठिनाई से वह पिता के साथ आ पाई थी। उसके ससुर ने सौ हुज्जतें की थी—'आप क्यो ले जाते हैं ? आपने ब्याह कर दिया, छुट्टी हुई। सयानी लडकी अपने घर ही भली है।' तीर-तमचे भी चला दिए ससुर ने—'दान-दहेज कम दिया था। कगलो-जैसा व्यवहार था।' और भी बहुत-सी बातें। बेचारी मेरी सखी का पिता बहुत अपमानित होकर किसी तरह पन्द्रह दिन के लिए बेटी को घर लाया था।

मेरा हृदय न जाने कैसी वितृष्णा से भर गया उसकी बातो को सुन कर। परन्तु दूसरी बार डेढ बरस बाद जब वह अपने छ मास के बालक को गोद मे लेकर आई तब तो उसका रहा-सहा पानी भी उतर गया था। उसकी आखो के चारो ओर स्याही फैल गई थी। आखो मे अब तेज तो था

ही नही। जिसके एक हास्य मे सौ बिजलिया तडपती थी, वह हास्य मर चुका था। चेहरा राख के समान हो गया था। उसे न अब अपने वस्त्रो को सभालने की रुचि थी, न किसी बात मे चाव था, जैसे वह इसी उम्र मे जीवन से बेजार हो चुकी थी। उस बार तो वह अधिक बात भी न करती थी, चुप रहती थी। बहुत पूछने पर फीकी हँसी हंसती थी और जब उसका मन बहुत व्याकुल होता था तो अपने छ मास के बालक को दुलराकर दिल बहलाती थी। यही तो था ब्याह का मूल्य, जो उसे मिला। अपनी देह देकर अवसाद, बन्धन और निराशा। मैं जितना सोचती उतना ही मेरा मन विद्रोह कर उठता। मैंने ठान लिया कि मैं विवाह करूँगी ही नहीं। किसी को मैं अलभ्य प्यार भी दू और दासी बनू। भला क्या तुक है इसमे ? अपने प्यार की कीमत मैं जान गई थी। कितने तरुण उसके एक कश के लिए लालायित हो मेरी भृकुटी की ओर देखते थे उन दिनो। मैं सबको समझती थी और गर्वित होती थी। कोरा प्यार ही नही, शरीर भी तो था मेरा, जिसका कोई मूल्य आका नही जा सकता था। मैं न तो अपने प्यार को सस्ता बेचना चाहती थी। न उसे अपात्र को किसी भी मूल्य पर देना चाहती थी। सो मेरा प्यार मेरे ही आचल मे एकत्रित होता गया, और उसके बोझ से मैं कराहने लगी। प्यार तो अब किसी को देना होगा—देने से ही ऊसकी सार्थकता होगी—इस बात पर मैं जितना ही विचार करती, व्याकुल होती जाती थी। नृत्य-सगीत का मुझे बचपन से शौक है। बचपन मे मेरे इसी शौक के कारण मेरा नाम सबने रखा था 'राधा'। तब उस नाम का माहात्म्य मैंने जाना नही था। अब जाना तो राधा नाम चरितार्थ करने को मर मिटी। कैसे कहू मैं अपने मन की पीर, और तभी मेरी नजर के नीचे आये राय। जिन्दगी की एक सजीव मूर्ति, रस भरा कलश। आखो मे ऐसा मद था कि क्या कहू ! उन बातो को आज बाईस वर्ष हो गए पर भूली नही हू, भूल सकती भी नही हू और तभी मेरे मन मे एक नई अनुभूति भी हुई। मैंने देखा, जैसे प्यार किसी को दे डालने को मैं अभी जी रही हू—वैसे ही प्यार की एक भूख भी मुझे मारे डाल रही है।

उनकी पीडा तो मैं बहुत दिन से अन्तरात्मा मे अनुभव करती रही थी, परन्तु असल कारण जान न पाई थी। वह जाना तब जब राय ने अकस्मात् ही अपने प्यार से मुझे सराबोर कर दिया। देन लेन के हिसाब-किताब रखने का मुझे होश नही रहा। देन-लेन हुआ तो बहुत, पर क्या दिया, क्या लिया—यह मैं नही जानती। और जब होश आया तो मैं उनकी हो चुकी थी, अथवा वे मेरे हो चुके थे। फिर तो देन-लेन की होड मच गई। वे जितना देते उससे बहुत-बहुत गुना मैं देती। बदले मे वे भी इतना देते थे कि क्या कहू! उनका प्यार मुझे अपने रग मे सराबोर करता और मेरे प्यार मे वे डुबकिया लगाते। उन दिनो विश्व के सब फूल खिल रहे थे, सब तारे जगमगा रहे थे, सारी दुनिया हँस रही थी, सब पर्वत हरे ही हरे थे, सब सरिताए कलकल निनाद करती जा रही थी। दुनिया का सौन्दर्य दुनिया मे बिखरा पड रहा था और हम दोनो—मैं और राय—एकमात्र उसके दर्शक और साक्षी थे।

अकस्मात् ही कुछ अनहोनी-सी होती प्रतीत हुई। मैंने भयभीत होकर देखा—मैं भद्दी होती जा रही हू। फिर मैंने अनुभव किया, कोई मेरे पेट के भीतर लातें चला रहा है। मेरा मन उदास रहने लगा। आलस्य और अवसाद मेरे मन मे भर गया। मुझे न खाना अच्छा लगता न नाच-रग भाता था। मैं अब नाच नही सकती थी। मेरा पेट बढ रहा था जिनसे कहती वह मुँह फेरकर हँस देता। राय से कहा तो उन्होंने शुभ समाचार बताया। मैं बर्बाद हो रही थी और दुनिया आनन्द मना रही थी। और फिर वह भयानक रात आई—जब हजार-हजार बर्छिया मेरी अकेली जान पर चली। यह प्यार का मूल्य था। परन्तु मैं मूर्छित हो गई। और जब होश मे आई तो देखा—चन्दकिरन-सी एक सजीव गुडिया मेरा स्तन चूस रही थी। वाह री प्रकृति! वाह री विडम्बना! वाह रे प्यार! वाह री औरत! वाह रे मर्द! तेरे ये रग-ढग! ये जादू के खेल!

और मेरी बच्ची बडी होने लगी। इसके बाद जब प्यार की जमा-पूजी को मैंने सभाला तो कलेजा धक् हो गया। मेरा प्यार तो अब मेरे ही

आचल मे पडा-पडा वासी हो रहा था और मुझे जो मिल रहा था वह प्यार न था—प्यार की तलछट थी, कडवी और अप्रिय। अपने प्यार का मूल्य तो मैंने व्याह से पहले ही जान लिया था। अव मैंने उसे यत्न से अपने कलेजे मे छिपा लिया। राय को यदि उसकी भूख नहीं है तो क्या जरूरी है कि ज़बरदस्ती उन्हे ही दिया जाए ? परन्तु अव मेरी भूख मुझे वेचैन कर रही थी—वह वहुत भडक उठी थी। मुझे ढेर-सा प्यार चाहिए था। राय की तलछट मेरे काम की न थी। मुझे उससे नफरत हो गई। मुझे चाहिए गर्मागर्म प्यार—एकदम ताजा, एकदम अछूता !

और वह मुझे मिल गया। इसे मैं अपना सौभाग्य नही कहूगी। उसका सौभाग्य न कहूगी। मुझ जैसी सत्पात्र को वह प्यार मिला। वह निहाल हो गया। और मैंने वहुत दिन वाद तृप्त होकर प्रेम का अमर रसपान किया।

# लीलावती

वडी खराव वात है ! ये वर्मा साहव तभी घर मे आते हैं, जव डैडी घर पर नही होते, और घटो जमे रहते हैं जैसे इन्हे और कोई काम ही नही हो। ममी और वे दोनो, कमरा वन्द करके न जाने कौन-सी गुत्थिया सुलझाते हैं ! मुझे यह सव पसन्द नही है। मैं आज ज़रूर डैडी से कहूगी। कल वे दोनो कोई पिक्चर देखने गए —मैंने साथ चलने को कहा तो टाल गए और इतनी रात वीते आए। मैं जाग रही थी। मैंने देखा—ममी की क्या हालत थी। उनके पैर सीधे नही पड रहे थे। ज़रूर-ज़रूर उन्होंने ड्रिंक किया था। सुवह आज जव मैंने पूछा तो विगड वैठी। इसके क्या मानी ? माना कि वच्ची हू पर सव समझती हू। वडी खराव वात है, वे वर्मा साहव अच्छे आदमी नही है।

ममी अव वह ममी नही रही। न उन्हे अव मेरा ही कुछ ख्याल है, न प्रेम है। वे चाहती है कि मैं मर जाऊ। मगर मैं क्यो मर जाऊ भला ? जव देखो भरी वैठी रहती है। कभी मीठे वोल नही वोलती। नौकर-चाकर सभी तग है। अभी वह हमारा पुराना वूढा नौकर नौकरी छोड गया, डैडी से उसने कहा, "मालिक, अव इस घर मे रहने के योग्य मैं नही रहा, न जाता हू।" जव मैंने समझाया तो कहने लगा, "विटिया, वस, इस घर मे रहने का धर्म नही रहा।" ममी की ओर उसका इशारा था। उसे भी ये वर्मा साहव एक आख नही सुहाते। लेकिन ममी है कि उन्हे देखते ही खिल उठती है। जव डैडी घर मे होते है तो उनकी तवियत खराव हो जाती है — कमरा वन्द कर पड जाती है, वोलती तक नही। पर वर्मा साहव की मोटर

का हॉर्न सुनते ही उनका दर्द काफूर हो जाता है। उनमे फुर्ती और चुस्ती आ जाती है। वे समझती है—मैं नादान हू, कुछ समझती ही नही, पर मैं सब समझती हू। जब मैंने कहा "ममी, ये वर्मा साहब मुझे अच्छे नहीं लगते—इनसे कह दो, यहा न आया करे," तो कहने लगी, "तू कौन है, जो मुझपर हुक्म चलाती है! वे तेरे पास तो नही आते, मेरे पास आते हैं, हमेशा आएगे। मैं उनके विरुद्ध एक लफ्ज नही सुनना चाहती।" मैं भी लड बैठी। मैंने कहा, "सुनना क्यो नही चाहती? मैं ही उनसे कह दूगी कि न आया करें," तो हाथ छोड बैठी। उनका मिजाज ही बिगड गया है। वे चाहती हैं कि मैं होस्टल मे जा रहू, और फिर घर मे उन्ही का राज हो जाए। क्यो रहू भला मैं होस्टल मे? उन्होने डैडी को पट्टी पढाई थी। डैडी राजी हो गए मुझे होस्टल भेजने के लिए। मगर मैंने इन्कार कर दिया। मैं नही जाऊगी—मैंने भी ठान ली।

डैडी अब बडी देर करके घर आते है, पता नही कहा रहते हैं। ममी से वे खिचे-खिचे रहते है। पहले की तरह दिल खोलकर हँसते-बोलते नहीं है। और कैसे बोलें! ममी का तो उन्हे देखते ही मूड खराब हो जाता है, तबियत खराब हो जाती है। डैडी रात को देर तक ड्रिंक करते रहते हैं और फिर सो जाते हैं। पहले तो ऐसा नही होता था।

घर मे कितना सूनापन आ गया। मैं न मन की बात ममी से कह सकती हू, न डैडी से। जब कहना चाहती हू तो ऐसा लगता है जैसे कोई पत्थर छाती पर अड गया है। आखिर बात क्या है? किस बात पर लडाई है? वह कभी खतम भी होगी? मुद्दत हुई, डैडी ने मुझे पिक्चर नहीं दिखाई। उस दिन मैंने कहा तो उदासी से बोले, "ममी के साथ चली जाना।" ममी भला मुझे साथ क्यो ले जाने लगीं? वे तो जाएगी वर्मा साहब साथ।

डैडी मुझे प्यार करते है। वे अच्छे आदमी है। बहुत अच्छे है। मन की बात मैं उनसे कह सकती हू। मेरी किसी बात को वे नहीं टालते। वे सदा प्रसन्न रहते है। पर पहले जैसे देर-देर तक मेरे साथ हँसते थे, अब

नही हँसते है । वस जरा-सा मुस्कराकर रह जाते हैं। ग्राफिस का काम वहुत वढ गया है, वहुत देर मे ग्राते है, पर फिर चले जाते हैं। पूछती हू—डैडी, ग्रव ग्राप मेरे साथ ताश नही खेलने, वाते नही करते—तो जरा-सा हँसकर कुछ वहाना कर देते हैं। वहाने की वातें मैं समझती हू, अच्छी तरह समझती हू । कुछ वात है उनके दिल मे, जिसे छिपाते हैं। शायद वे ममी से दु खी है ।

एक दिन मैंने उनसे कहा था "डैडी, ग्राप ममी से वोलने क्यो नही हैं ? उनके पास वैठते क्यो नही है ? पहले तो ऐसा नही था। जव ग्रापका ग्राफिस से ग्राने का वक्त होता था तो ममी परेशान हो जाती थी। स्वय नाश्ता लगाती थी । मुझसे तकाजा करके कपडे वदलवाती थी, ग्राप भी नई साडी पहनती, वाल वनाती ग्रौर गुनगुनाती हुई वार-वार घडी की ग्रोर देखती रहती थी। हर मिनट पर कहती थी—'तेरे डैडी ने ग्राज इतनी देर कर दी। ग्रभी तक नही ग्राए।' पर ग्रव तो ऐसा नही होता। सव-कुछ नौकरो पर छोड दिया है उन्होने। जैसे ग्रापमे उनकी कोई दिलचस्पी ही नही रही। आप ग्राते है तो किसी वहाने से कही खिसक जाती हैं।"

हँसकर मेरी वात सुनकर डैडी ने मेरे सिर पर हाथ फेरते हुए कहा, "तेरी वात ठीक है लीला। उनको ग्रव मुझ मे दिलचस्पी नही रही। मैं पुराना हो गया। लेकिन तू तो मेरा वहुत ख्याल रखती है, तू वडी ग्रच्छी वेटी है।"

वस वात कहते-कहते उनकी हँसी गायव हो गई, ग्रौर मैं देखती रह गई। मगर ग्रव तो कुछ-कुछ मैं समझ रही हू। इन वर्मा साहव की वात, डैडी उनका ग्राना पसन्द नही करते। फिर उन्हे ग्राने को मना क्यो नही कर देते ? न करे वे, मैं मना कर दूगी। हम तीन ग्रादमी घर मे है। मै हू, डैडी है, ममी है। वस, चौथे की क्या जरूरत है ! नही, नही, विलकुल जरूरत नही है, मैं ग्राज डैडी से कहूगी। सव वात कहूगी।

# वर्मा

मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है, जैसे मैं किसी चट्टान से टकरा गया हू। माया औरत है मगर चट्टान की तरह सख्त और अविचल। मैं मर्द हू, मगर छुई-मुई के पेड की भाति सकोच और झिझक से भरा हुआ। राय मेरे अफसर है, और मैं उन्ही के आफिस का एक कर्मचारी हू। अब यदि मैं खुल्लमखुल्ला माया से अपना सम्वन्ध स्थापित कर लेता हू, तो सभवत मेरी नौकरी नही रहेगी। राय मुझे कभी नही वख्शेगे। यो वे एक खुश-अखलाक अफसर है। पर कोई कितना ही खुशअखलाक हो, अपनी पत्नी के जार को सहन नही कर सकता। मैं जानता हू, राय का चरित्र दृढ नही है। अनेक लडकियो से उनके सम्पर्क हैं। उनके सम्वन्ध मे मैं वहुत-सी कहानिया सुन चुका हू। आफिस के चपरासी से हैड तक उनकी रगीन कहानिया कहते-सुनते रहते है। पर उनसे किसी को कोई शिकायत नही, सव उनसे खुश है। वे जैसे खुश-अखलाक हैं वैसे ही उदार भी है। कितनी वार वे अपने मातहत लोगो का पक्ष लेकर ऊपर के अफसरो से भिड गए है। वेशक वे सीधे-सादे आदमी नही है। पर सीधा होना कोई अच्छी वात थोडे ही है। वेचारी गाये, जिनके सिरो पर लम्बे और पैने सीग होते है, केवल अपनी सीधाई के कारण ही कसाई की छुरी का शिकार वनती है। उन पर वे सीगो का प्रहार नही करती। राय न स्वय सीधेपन को पसन्द करते है न किसी की सीधाई की तारीफ करते हैं।

माया से मेरी मुलाकात छ महीने से है। राय की मुझ पर खास कृपा रहती है। उन्होंने मुझे कठिनाइयो से उवारा है। मैं तो यहा तक

कह सकता हूं कि वे मुझसे प्रेम भी करते हैं। इसी से उनके घर मेरा आना-
जाना आरम्भ हुआ। माया से परिचय हुआ। मैं नहीं जानता, क्यों?
पहली ही नज़र मे मैंने माया को पसन्द कर लिया। उसकी उम्र मुझसे
ज़्यादा है। वह बाईस वर्षों से राय की पत्नी है, जबकि मैं अभी तक
कुंआरा हूं। वह चालीस से ऊपर की आयु को पहुंच चुकी है और अभी
मैं केवल छत्तीस का ही हूं। फिर भी मेरा मन उसे देखकर उसपर आकर्षित
हो गया। और मैंने देखा, माया ने इसे जान लिया, और वह नाराज़ नहीं
हुई, सदय हुई। राय को मेरे ऊपर सन्देह तक नहीं हुआ। और हम
दोनो—मैं और माया—भी सभवत अज्ञात ही एक-दूसरे की ओर आक-
र्षित होते चले गए। परन्तु प्रेम की भाषा मैं नहीं जानता प्रेम के तत्त्व
और प्रेम के फल को भी शायद नहीं जानता। आपको आश्चर्य हो सकता
है—मेरी उम्र के आदमी को आजकल अधेड़ कहा जाता है। सो मेरा यह
प्रेम-सम्बन्धी अज्ञान सर्वथा हास्यास्पद है। परन्तु मैं एक दरिद्र परिवार
का सदस्य हूं, जिसे लोग गदहपचीसी कहते हैं। वह उम्र तो मेरी जीवन-
सघर्ष मे पिस गई। पिता स्वर्गवासी हो गए। माता, दो भाई और दो
कुंआरी बहिनो का बोझ सिर पर लेकर मैं अपनी कच्ची आयु मे ही, बिना
गृहस्थ बने ही गृहस्थी बन गया। मेरी सारी भावुकता पट की चिन्ता मे
खर्च हो गई, और उभरता हुआ यौवन भोजन के बोझ से चकनाचूर हो
गया। जीवन की रगीनियो से मैं वचित ही रहा। विलास और ऐश्वर्य
तो दूर, जीवन मे सतोष और तृप्ति के दर्शन भी नहीं हुए—केवल भूख
ही को मैंने जाना-पहचाना और अपनी जवानी अर्पित कर दी।

बेशक मैं कहता हूं—मैंने अपनी भूख को अपनी जवानी अर्पित कर
दी, और अब यद्यपि मैं केवल छत्तीस ही बरस का हूं पर जवानी को उतना
मैं अपने भीतर नहीं देख रहा। आज भी तो मैं भूख से लड़ रहा हूं। बहिनो
की शादी हो गई। एकमात्र पैतृक मकान रहन हो गया। एक भाई अभी
पट रहा है, दूसरे को नौकरी मिली है, पर अभी वह किसी को कुछ देना
देने के योग्य नहीं है। जितना भी कमाता हूं, खर्च हो जाता है। और मन

वैसी ही कायम है।

आखिर यह भूख क्या वला है! इसपर मैंने बहुत वार विचार किया है। तन की भूख पर भी और मन की भूख पर भी। कम्युनिस्ट लोग कहते हैं, दुनिया के सब लडाई-झगडे तन की भूख के कारण हैं। रोटी ही सब बीमारियों का इलाज है। रोटी ही सब मुश्किलो को आसान करने का गुर है। लेकिन फ्रायड कहता है—सब झगडो की जड तन की नही, मन की भूख है, काम की भूख, यौन-क्षुधा। और सब सामाजिक, आर्थिक और व्यक्तिगत रोगो की दवा है—औरत, यौन-तृप्ति।

मन की इस भूख ने मुझे बहुत सताया। आखिर मैं एक तन्दुरुस्त स्वस्थ तरुण रहा हू। मेरी रगो मे लोहू है, पानी नही। काम-वासना—स्त्री की भूख से तडप-तडपकर मैंने लम्बी रातें विताई है। स्त्री की अनेक कल्पित मानस मूर्तियो से मैंने सगम किया है। पर उससे मेरे मन की भूख मिटी नहीं, दवी नही, और भी भडकी है।

स्वास्थ्य से काम-वासना का अटूट सम्वन्ध है। मैं जानता हू, काम-वासना शुद्ध शारीरिक उद्वेग है, मानसिक नही। इसलिए सयम इस सम्वन्ध मे अधिक उपयोगी नही हो सकता। यदि सयम या ब्रह्मचर्य का यह अभि-प्राय समझा जाए कि स्त्री-सहवास तथा काम-पूर्ति के अस्वाभाविक तरीके और सर्व-काम-सम्वन्धी विचार-भावनाओ को वलात् रोकना ही सयम या ब्रह्मचर्य है, तो वह केवल सम्पूर्ण नपुसक लोगो के ही लिए सभव है। मैंने अपनी उठती हुई आयु स्त्री-विहीन ही व्यतीत की है। मैंने इस दुर्जय काम पर विजय पाने के वडे-वडे प्रयत्न किए। व्यायाम से शरीर को थका डाला, थकावट से जहा थोडी वासना कम हो जाती थी वहा शारीरिक और मान-सिक शक्ति भी कम होती थी। पर व्यायाम से ज्योही शरीर सवल हुआ, काम-वासना प्रचण्ड हो गई। ओह, इस प्रचण्ड काम-वासना को दवाने मे मैंने अपने जीवन के कितने सुनहरी दिन वर्वाद किए, कितने आनन्द के क्षणो को निरानन्द वनाया! उनकी वात क्या कहू! क्या आप विश्वास करेंगे कि उन दिनो स्त्री की प्राप्ति न होने से म अर्ध-विक्षिप्त हो गया था।

एक बात मैंने और देखी, उत्तम पाचन-शक्ति का काम-वेग पर भारी प्रभाव पड़ता है। सदैव से मेरी पाचन-शक्ति तीव्र रही है। इससे मेरे शरीर पर प्रचण्ड काम-शक्ति का उदय होता रहा। कहना चाहिए—ज्वार-भाटा आता रहा। मैं अनुभव करता था कि मेरा शरीर तप रहा है, पर कामाग्नि के इस ताप को थर्मामीटर पर नहीं नापा जा सकता था।

मैंने विज्ञान की शिक्षा पाई है। मैं जानता हूं कि हमारे शरीर का निर्माण करने की शक्ति हमारे रक्त-सेलों में है। जैसे छोटी-छोटी ईंटों से मकान बनाए जाते हैं, उसी प्रकार सेलों से शरीर बना है। और रक्त-प्रवाह के साथ जीवन-शक्ति सारे शरीर को मिलती है। परन्तु यह प्रवाह काम-वासना पर निर्भर है। काम-वासना हमारे शरीर में एक आग जलाती है, उससे तपे हुए गुलाबी गालों को देखकर हम प्रसन्नता और उत्तेजना होती है, क्योंकि इससे रक्त की उत्तमता का सम्बन्ध है। जितना ही हमारा रक्त उत्तेजित होगा, उतना ही हमारा स्वास्थ्य उत्तम होगा, और रक्त की उत्तेजना का उत्तम प्रकार कामोत्तेजना ही है।

मानवीय विकास का इतिहास काम-विकास से आरम्भ होता है। बच्चे काम-वासना के विकास से रहित होते हैं। यह उनका सौभाग्य ही है। उनके कोमल नन्हे शरीर और सुकोमल हृदय भला काम के प्रचण्ड वेग को कैसे सह सकते थे!

प्राणि-शास्त्र-विशारदों ने कहा है कि प्रेम का उदय विचार से होता है। परन्तु प्रेम पर संयम रखने की आवश्यकता पर भी उन्होंने विचार किया है। शरीर एक महत्त्वपूर्ण यन्त्र है, उससे उतना ही काम लिया जाना ठीक है जितने की शक्ति उसमें है। प्रेमोत्तेजना में यदि शरीर की शक्ति से बाहर काम किया जाएगा तो निश्चय ही उसका परिणाम अनिष्टकारक होगा। जब प्रेम के साथ कामोदय होता है तो रक्त में और नाड़ियों में एक तीव्र उत्तेजना का अनुभव होता है और आनन्द की अनुभूति से प्रेम मिलकर एक मानसिक काम बन जाता है जो अत्यन्त आह्लादजनक होता है। वह जब युवा पुरुष में, जो स्वस्थ भी है, पूर्ण आवेग से होता है तो प्रेम के

पर उग आते हैं और उसे जीवन मे कही का कही ले उडते हैं।

ऐसा ही मैंने अपने जीवन मे देखा। मैंने कहा आपसे कि मैं पूर्ण स्वस्थ युवा था, और जब-जब मेरे अग मे कामोत्तेजना होती थी, मेरे श्वास तथा रक्त के प्रवाह मे अन्तर पड जाता था, यह मैं अनुभव करता था। भोर के तडके जब मैं उठता था तो ऐसा प्रतीत होता था कि शरीर के साथ सारी ही इन्द्रिया जाग उठी है। मैं देखता था कि तनिक सोचने से मस्तिष्क मे रक्ताभिसरण भर जाता था। रक्ताभिसरण जीवन मे कितना बहुमूल्य है, इसे सब लोग नही जानते—और भी एक बात है जिसे सब लोग नही जानते। जितनी अधिक मस्तिष्क की बडी शक्ति होगी, उतनी ही उत्तेजना अधिक होगी। इसलिए कामोत्तेजना जीवन के सब कामो से अधिक महत्त्वपूर्ण है। वह जितनी ही अधिक होगी, उतना ही मस्तिष्क विकसित होगा। मनुष्य अपने अस्तित्व को कायम रखने के लिए जो न केवल उसके व्यक्तित्व मे सीमित है अपितु ब्रह्माण्ड-भर मे विस्तृत है, मस्तिष्क से बहुत काम लेता है। इसीसे मनुष्य का मस्तिष्क ससार के सब प्राणियो से बडा होता है। परन्तु यह एक गम्भीर तथ्य है कि मस्तिष्क को आराम की ज़रूरत है, पेशियो को परिश्रम की। कामोत्तेजना, जो पुरुषत्व की प्रतीक शक्ति है, जीवन की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और आनन्दवर्धक वस्तु है।

आप चाहे जो भी समझें, पर मैं जब अपने जीवन के सबसे नाजुक और महत्त्वपूर्ण लक्ष्यबिन्दु पर आ पहुचा हू तो मन की सब गुप्त-प्रकट बातें प्रकट करूगा। एक ही शब्द मे मैं कहना चाहता हू कि जब मैं अपरिसीम काम-वासना को शरीर मे भडका देखता था तो ऐसा अनुभव करता था कि जैसे ससार की बहुमूल्य मणि मैंने प्राप्त कर ली है।

कोई कमज़ोर दिलवाला व्यक्ति उस वेग के धक्के को सह नहीं सकता था। मैं उसका निवारण नहीं कर सकता था। इतना ज्ञान मुझमे था कि मैं अस्वाभाविक आवेश से बचता गया। मुझे अपनी काम-वासना से प्रबल युद्ध करना पडा। मैं अपना ध्यान दूसरे कामो मे बटाता और रात-दिन काम मे व्यस्त रहता, परन्तु काम-वासना उतने ही वेग मे मेरे सम्मुख आ

खडी होती।

शारीरिक आवश्यकताए अनिवार्य है। यह वह सघर्ष है जिसमे वार-वार हमे पडना पडता है। दिन-भर काम मे चकनाचूर शरीर लेकर जव रात को शय्या पर जाता तो, यद्यपि वह आराम का समय होता था, परन्तु मुझे उस एकान्त रात्रि मे अपनी सारी शक्ति काम-वेग से युद्ध करने मे जुटानी पडती थी, यद्यपि यह युद्ध मुझे चुपचाप करना पडता था और कभी-कभी विषम कठिनाई का साम्मुख्य भी होता था। कोई भी अस्वाभाविक चेष्टा नितान्त मूर्खतापूर्ण थी। और वेश्या-गमन स्वास्थ्य और प्रतिष्ठा के लिए खतरे की चीज थी। तव इस काम-शत्रु को दमन करने का क्या मार्ग हो सकता था? इस निर्दय शत्रु का इलाज स्त्री थी, जो मुझे प्राप्त न थी। कभी-कभी प्रकृति सहायता करती थी, पर वह यथेष्ट न थी। इस दुर्दम्य काम-पीडा को शान्त करने के लिए एक आदर्श साथी की आवश्यकता थी, जो इस आनन्द के आदान-प्रदान मे वरावरी की प्रतिस्पर्धा करे और जिसे मैं अपने आपको सौप दू, जो न केवल आनन्द की अपितु सौभाग्य की भी वात थी।

परन्तु मुझे ऐसा साथी नही मिला। और मेरी जीवन की दुपहरी इस कठिन काम-सग्राम मे लडते-लडाते ही कटी। मेरी जीवन की इस कठिनाई और दयनीयता का कोई कहा तक अनुमान लगा सकता है भला!

मैंने ब्रह्मचर्य और सयम की चर्चा की है। दोनो का ही मैंने सहारा लिया पर लाभ कुछ न हुआ। यह कहना कि ब्रह्मचर्य से किसी हालत मे कोई हानि नही है, सरासर अवैज्ञानिक है। मैंने तो देखा कि ब्रह्मचर्य के पालन मे वेहद शारीरिक शक्ति खर्च हुई और उससे तारुण्य के उन्माद का वेग ही रुक गया, और मैं सदा के लिए म्लान और निस्तेज हो गया।

यह एक वडा ही पेचीदा सवाल है, जो मेरे-जैसे लाखो-करोडो लोगो के सामने आता है कि अविवाहित व्यक्ति को कामेच्छा होने पर उसकी पूर्ति किस प्रकार करनी चाहिए! यह सवाल आरोग्य-विधान की दृष्टि से मैं कर रहा हू। क्या वह व्यसन करे जो हानिकारक है, या हस्तमैथुन

करे जो खतरनाक है, या परस्त्री-गमन करे जो अनीति है। वह यदि समाज-बन्धन और नीति-बधन मे बचने की परवाह नही करता, तब तो कोई दिक्कत ही नही है। मैंने इस सबध मे चिकित्सको की राय ली और उन्होने स्पष्ट कहा कि वह किसी भी स्त्री से सहवास करे। मैंने जब नीति की बात कही, तो उन्होंने कहा—चिकित्सक नीति का रक्षक नही है, स्वास्थ्य का रक्षक है। मैंने चाहा कि वे कोई ऐसी शामक औषध दे कि जिससे मेरी भडकी हुई वासना शमित हो जाए—परन्तु उन्होंने निश्चित रूप से मुझे सचेत कर दिया कि यदि मैं ऐसी कोई औषध लेने की मूर्खता करूगा तो न केवल काम-वासना, प्रत्युत शरीर की समस्त क्रियाए भी मद पड जाएगी और शीघ्रातिशीघ्र वृद्धावस्था मुझे धर दबाएगी। यह शरीर के लिए एक जोखिम की बात है, और इन चीजो को लगातार लेने से शरीर की और मन की स्फूर्ति नष्ट हो जाती है। निस्सन्देह कुछ परि स्थितिया है जबकि साल-छ महीने के लिए अथवा जन्म-भर तक के लिए ब्रह्मचर्य रखना लाभदायक हो सकता है, पर वह खास खास हालतो मे, खास-खास रोगियो के लिए, न कि पूर्ण स्वस्थ और बलवान् लोगो के लिए आम-नियम बन जाना चाहिए। और इस निर्णय का अधिकार नीति-उपदेशको एव धर्मगुरुओ को नही है, प्रत्युत चिकित्सको को है। स्वर्ग-प्राप्ति, मुक्ति के लिए या धर्मलाभ के लिए ब्रह्मचर्य की आवश्यकता नहीं है, ब्रह्मचर्य की आवश्यकता स्वास्थ्य-लाभ के लिए है। भूख और काम-वासना दोनो का शरीर पर समान अधिकार है। कुछ लोग कुछ समय तक उपवास कर सकते है। इससे यह कहना कि मनुष्य के लिए भोजन की आवश्यकता ही नही है, मूर्खता है। सहवास मे शक्ति खर्च होती है यह ठीक है, पर काम-धन्धा करने मे, चलने-फिरने और परिश्रम करने—सभी मे तो शक्ति खर्च होती है, पर उसकी पूर्ति शरीर स्वाभाविक रीति से कर लेता है। वीर्य को शरीर मे एकत्रित करना सम्भव नही है, वह खारिज होता है। तभी उसके बनने की क्रिया ठीक-ठीक होती रहती है। बेशक काम-वासना की शक्ति का कुछ अश दूसरे कामो मे खर्च किया जा सकता है, पर वह पूरी

तौर पर दूसरे काम मे नही लाई जा सकती है। न काम-वासना सतानोत्पत्ति के लिए है—वह तो एक विशेष सुख और जीवन की स्फूर्ति के लिए है।

चिकित्सको के इस निर्णय ने मेरे मन को झकझोर डाला और मै एक जीवन-साथी की प्राप्ति के लिए छटपटाने लगा। पर एक साथी को कैसे प्राप्त करू, यही मेरे लिए समस्या बन गई। मैने फ्रायड के मनोविज्ञान का मनन किया। उनका अचेतन-सिद्धान्त बडा अद्भुत है। उनका कथन है कि मन के सब व्यापार हमे मालूम नही होते, और मन का एक निर्ज्ञान-प्रदेश होता है। यही निर्ज्ञान-प्रदेश हमारी कामनाओ की समष्टि है। निरुद्ध होने पर भी हमारी कामनाए मन से सर्वथा दूर नही होती, प्रत्युत मन मे आत्म-प्रकाश करने की चेष्टा करती है। जीवन मे जो छोटी-छोटी भूले होती है—उनके मूल मे भी यही निरुद्ध कामना काम करती है। हमारे मन मे ऐसी अनेक कामनाए होती है जो सामाजिक बन्धन तथा अनुशासन के कारण अमल मे नही आ पाती। पर जब हमारी बुद्धि जागरित होती है, तब हम उन्हे बलपूर्वक टालते जाते है, पर स्वप्नावस्था मे जब बुद्धि अकर्मण्य बन जाती है, तो हमारी ये निरुद्ध कामनाए स्वप्न मे नाना प्रकार के रूप धारण करके आत्म-प्रकाशन करती है।

उन निरुद्ध कामनाओ मे अनेक ऐसी है जिनका सम्बन्ध काम-वासना से है। मनुष्य को सामाजिक बन्धनो के कारण उन्हे निरुद्ध करना पडता है और वे रुद्ध कामनाएँ अनेक उपायो से तृप्ति-लाभ करने की चेष्टा करती है, जिनके रूपान्तर नाना मानसिक रोग है।

मेरे मस्तिष्क मे जब ये जटिल काम-समस्याए उलझ रही थी और मै निश्चय ही मानस-रोगो की ओर धकेला जा रहा था, तभी माया मेरे सम्पर्क मे आई। परन्तु मैने माया को नही—माया ने मुझे अपनी ओर खीचा। मै कह चुका हू, उनकी आयु मुझसे अधिक है। उनकी सामाजिक स्थिति भी मुझसे ऊपर है। मेरे मन की शकाए, झिझक, सकोच बहुत थे। पर प्रकृत भूख भी एक स्त्री के लिए अत्यन्त भयानक रूप मे मुझे पीडित कर

रही थी। इस कारण माया की प्राप्ति से मेरे जीवन की एक पूर्ति हो गई। मैंने अपने को माया के अर्पण कर दिया है—तन से भी और मन से भी। और अब मैं उसका बडे से बडा मूल्य चुकाने पर आमादा हू। अब तो मेरा मुर्झाया हुआ यौवन फिर से हरा-भरा हो गया है।

माया ने मुझसे विवाह का प्रस्ताव किया है। उस सम्बन्ध की सब प्रतिकूल-अनुकूल बातो पर हमने विचार कर लिया है और मैंने सब कुछ उसी पर छोड दिया है। वह एक हौसलेमन्द औरत है। और मैं आशा करता हू कि उसे पत्नी के रूप मे प्राप्त कर मैं अपने अब तक के अपूर्ण जीवन की पूर्णता को प्राप्त कर लूगा।

# दिलीपकुमार राय

आखिर यह बात भी होकर रही। माया चली गई। आज नही तो कल, यह काम तो होना ही था। छ महीने से मैं इस काम की आशका कर रहा था। लेकिन यह एक ज़बर्दस्त घटना रही। मेरी बात छोड़िए पर दूसरा कोई व्यक्ति इसकी आशा नही कर सकता था। माया कोई नई-नवेली नही है। उसकी उम्र चालीस को पार कर रही थी। बाईस बरस वह मेरे साथ रही। एक जवा मर्द औरत की तरह उसने मेरे साथ सब भले-बुरे दिन देखे। सबमे उसने हिम्मत और दृढता से मेरा साथ दिया। मै उसे बेवफा कहने की जुर्रत नही कर सकता। इस एक घटना के अतिरिक्त जिसका सम्बन्ध वर्मा से है, वह अन्तत मेरे प्रति वफादार बनी रही। एक बार भी मैंने उसकी दृष्टि मे अन्तर नही देखा। कभी भी मैंने उसे बाधकर नही रखा। बधकर रहनेवाली औरत वह है भी नही। म औरत को भैस-गाय नही समझता हू कि गले मे जजीर बाधकर रखू। फिर माया तो एक सुशिक्षित और समझदार औरत है। वह अपना भला-बुरा, इज्जत-आबरू सब समझती है। वह बडी गैरतमन्द भी है, तेजस्विनी भी है। अपनी शान और मर्यादा का उसे पूरा ख्याल है। वह जब तक रही अपनी निष्ठा के साथ, और अब गई तो भी अपनी निष्ठा के साथ। उसकी आखो मे झिझक न तब थी, न अब।

बेबी अब बच्ची नही रही। उन्नीस बरस की हो चुकी। सब जाना ना समझती है। फिर भी अभी उम्र तो उसकी बच्ची ही है। जिन्दगी के उन गम्भीर और पेचीले मामलो को वह कैसे समझ सकती है जो इतना

उलझन से पैदा होते है। उसने तो अभी जिन्दगी की सुबह ही देखी है। जिन्दगी मे कभी दुपहरी भी आती है, उसमे आधी-तूफान, बरसात, भूचाल, बरबादी भी आती है, यह वह क्या जाने? अपनी ममी को वह प्यार करती थी—शायद अब भी करती है। आज तीन दिन हो गए, जब से माया गई है, वह बराबर रो रही है। खाना उसने नही खाया है। एक शब्द भी उसने अपनी जबान से नही कहा है। चुपचाप रो रही है, बस रो रही है। जैसे वह एक दूध पीती हुई बच्ची हो और उसे अकेली छोडकर उसकी मा मर गई हो। मुझे भी वह प्यार करती है, बहुत करती है। इसी मे वह मुझे देखते ही फूट पडती है। शायद वह समझती है कि उसी की वजह से माया चली गई है।

जब उसने सब हकीकत मुझसे कही—मेरी गैरहाजिरी मे वर्मा का आना और घटो घर मे एकान्त मे रहना, माया का उसके साथ घर से बाहर सिनेमा के बहाने जाना और बडी रात बीते शराब के नशे मे धुत् लौटना, बेबी के रोक-टोक करने पर डाटना-डपटना, हाथ तक छोड बैठना—तो मै चुप न रह सका। कुछ तो सब बाते सुनकर म अपने दिमाग का सतुलन खो बैठा, और कुछ यह भी ख्याल किया कि चुपचाप बर्दाश्त कर लू तो बेबी क्या कहेगी। मै माया से उलझ बैठा। कुछ यह बात नही कि मै सब मामला जानता नही था। कई महीने पहले ही मै वर्मा और उसके अवैध सम्बन्ध को जान-भाप गया था, पर मुझे उस हालत मे क्या करना चाहिए था, यही तय न कर पाया था। बहुत बार मैने माया को समझाना भी चाहा। पर म उसे नसीहत कैसे दे सकता था, जबकि वह जानती है कि मै खुद उसके प्रति वफादार नही हू। सिर्फ एक रेखा ही की तो बात नही, और भी स्त्रियो से मेरे सम्बन्ध है। इस बात को छिपाने मे क्या लाभ है? खासकर माया से तो कुछ छिपा नही है। रेखा की बात भी वह जान गई है। रेखा एक वफादार औरत थी। परन्तु उसके ब्याह को तो अभी पाच ही बरस हुए थे। पाच बरस की वफादारी भला बाईस बरस की वफादारी का क्या मुकाबला कर सकती है!

मैंने आपसे क्या अभी नही कहा था कि माया मेरे प्रति बाईस बरस वफादार रही। और वफादार ही क्यो। कहना चाहिए एक सच्ची जीवन-संगिनी—जिसमे प्रथम श्रेणी की समझदारी, विश्वसपात्रता, आत्मत्याग, साहस, हिम्मत और निष्ठा थी। इन सब बहुमूल्य सद्‌गुणो की कितनी बार परीक्षा हुई। कितने ऐसे क्षण आए कि जब पहाड भी डिग जाते है। पर वह नही डिगी।

बाईस साल थोडे नही होते। जब वह ब्याहकर आई थी तब बीस बरस की थी। बस, जैसी हमारी बेबी है। शक्ल और सूरत दोनो ही मे बेबी माया की एक सही प्रतिलिपि है। ऐसा ही चमकदार गुलाबी उजला रग था, ऐसी ही बडी-बडी आखें, होठो पर ऐसी ही आग्रही हँसी। आर प्यार का ऐसा ही अल्हड उन्माद—जनून और आवेग। बेबी ही की भाति वह आग्रही स्वभाव की थी। ज़रा-सी बात पर ही वह गुस्सा हो उठती थी और वह तब तक ज़मीन-आसमान सिर पर उठाए रहती थी जब तक मै उसके तलुए अपनी गोद मे लेकर बैठकर उन्हे न चूमूं। और तब वह एक-बारगी ही खिलखिलाकर हँस पडती, गले से लटक जाती और उन एक बार के चरण चुम्बन के बदले हज़ार गर्म-गर्म चुम्बन देकर भी नही अघाती थी।

ओह, क्या कहते-कहते क्या कह गया। बेवक्त ये बाते याद आ गईं, बीती बातें, जो अब कभी नही लौटेगी। और इनके साथ वे चादी की अन-गिनत रातें और सोने के दिन जो माया के साथ मेरे बीते। पर अब उन्हे याद करने से क्या फायदा ? जो बीत गया—सो बीत गया। पर मै कह तो यह रहा था कि जीवन के बाईस बरस कम नही होते। मैंने कहा न कि उस वक्त माया की उम्र बीस बरस की थी और मेरी छब्बीस बरस की। हम दोनो ही गदहपचीसी के फेर मे थे। सो अब माया बयालीस को पार कर रही है और मैं अडतालीस के पेट मे हू। हम दोनो ही की जवानी खत्म हो चुकी, ज़िन्दगी का उभार बीत चुका दिन की दुपहरी ढल चली। ज़िन्दगी की रंगीनी अब बीती हुई कहानी हो गई।

इसी से मुझे ज़रा हिम्मत भी हुई। न जाने क्यो—मेरे मन मे माया पर एक दावेदार होने की भावना छा गई। और जब मैंने वेबी की शिकायत के बाद उससे बात की, तो मैं स्वीकार करता हू मैं गधा बन गया, मैंने अपने मस्तिष्क का सतुलन खो दिया। बहुत देर तक वह चुपचाप पत्थर की मूर्ति की भाति बैठी रही। एक शब्द भी उसने मुझसे नही कहा। पर उसकी इस चुप्पी से मैं और चिढ गया। मुझे आश्चर्य है कि मैंने उसपर हाथ नही छोडा। मैं स्वीकार करता हू, मैं मानसिक उत्तेजना के उस धरातल पर पहुच गया था कि यदि मेरे पास उस समय रिवाल्वर होता तो मैं बिला शक उसे गोली मार देता।

आप मेरी बात पर हँसेंगे। औरतो के सम्बन्ध मे मेरे विचार आप जान चुके है और अब मेरी ये बातें तथा मेरे मन को यह स्थिति आपको सर्वथा असगत प्रतीत हो रही होगी, पर सस्कारो की दासता से मैं भी मुक्त नही हू। विवाहित पत्नी पर पति के अधिकारो को अभी मेरे मन ने त्यागा नही है। सब युक्तिया एक ओर ह, मानसिक दासता दूसरी ओर।

मुझे याद आता है, मैंने बडी सख्त बाते भी माया से कही। लानत-मलामत भी की। फिर भी वह चुप रही। मैं समझता ह, उसपर मैं उस वक्त हाथ भी उठा बैठता, या गोली चला देता—तब भी वह वैसी ही निश्चल-अकम्पित रहती, कुछ भी प्रतिकार न करती। उसके नेत्रो मे न भय था, न लज्जा थी, न सकोच था, न क्रोध था। मैंने उस क्षण उसके नेत्रो मे एक अविचल दृढता को देखा। और उससे मेरा हृदय काप उठा। एक भावी भय की आशका से मैं अभिभूत हो उठा और अपनी मानसिक चचलता और गुस्से को काबू मे न रख सकने के कारण तेज़ी से उठकर घर से बाहर चला गया।

बडी रात बीतने तक मैं इधर-उधर घूमता-भटकता रहा। कहीं भी मेरा मन नहीं लग रहा था। मै नहीं जानता कि उस वक्त मेरे मन मे गुस्सा भरा था या दुख। एक-दो बार मन हुआ, किसी दौडती हुई मोटर

के आगे गिरकर जान दे दू। वह मैं, जो अपनी ज़िन्दगी को प्यार करने का सबसे बडा हिमायती हू—इस वक्त ऐसा अनुभव कर रहा था कि जैसे ज़िन्दगी के बोझ से मैं चकनाचूर हो रहा हू और अब एक सेकण्ड भी इस बोझे को मैं नही ढो सकता हू।

बहुत रात बीते, हारा-थका, भूखा-प्यासा जब मैं घर आया तो देखा, बेबी बराडे मे मेरी प्रतीक्षा मे खडी है। उसे सब्र न हुआ। दौडकर वह मुझसे लिपट गई और सिसकिया भर-भरकर रोने लगी। उसने टूटते कण्ठ से कहा, "डैडी, वे चली गईं, ममी चली गईं।"

इन बातो की सम्भावनाए मेरे मन मे नही थी, यह बात नही, पर इस वक्त बेबी के मुह से इन शब्दो को सुनकर मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि किसी बधिक ने निर्दयता से मेरी एक पसली मेरे सीने से ज़बर्दस्ती निकाल ली है। उस दर्द को मैं एकाएक सहन न कर सका। जिस दर्द-भरे लहजे मे बेबी ने वह बात कही थी, उसने मेरे कलेजे को चाक कर दिया। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि मैं अभी बेहोश हो जाऊगा, या मेरा हार्ट ही फेल हो जाएगा। मैं एक बार ज़मीन मे झुक गया। बेबी चीख उठी। नौकर-चाकर दौडे। सबने आकर मुझे बिस्तर पर लिटाया। बेबी ने चाहा कि डाक्टर को फोन करे, पर मैंने रोक दिया। मैंने कहा, "मैं अच्छा हू, मैं अच्छा हू।"

इस वक्त मैं उसी तरह कराह रहा था जैसे ज़िबह होते वक्त गाय कराहती है। फिर भी मैं अपनी हिम्मत को बटोर रहा था। सब नौकरो को चले जाने को मैंने कहा और फिर बेबी को ढाढस देने लगा। मैंने कहा, "बेबी, फिक्र न कर, तेरी ममी आ जाएगी। उन्हे गुस्सा आ गया होगा। जाएगी कहा! न होगा तो मैं सुबह उन्हे बुला लाऊगा।"

लेकिन बेबी ने मुझसे कहा, ममी गुस्सा करके नही गई है। न वे अब लौटकर आएगी। बस चली गई है, हमेशा के लिए। मैं कितनी बुरी हू! मैंने आपको ममी से लडवा दिया।" बेबी मेरे सीने पर गिरकर फफक-फफककर रोने लगी। उस वक्त ज़िन्दगी मे पहली ही बार मुझे मालूम

हुआ कि मेरे पास एक बाप का भी दिल है। पहली बार मैंने देखा कि बाप का दिल कैसा होता है। पर फौरन ही मन मे सोचने लगा—मा का भी तो दिल होता है। माया क्या मा का दिल यही छोड़ गई? मैंने पूछा, "बेबी, क्या तेरी ममी ने जाते वक्त तुझसे कुछ कहा?"

"वे जाने को बिलकुल तैयार होकर आई थी। जाते वक्त सिर्फ उनका पर्स उनके हाथ मे था। उन्होने आकर मुझे चूमा, अपनी गोदी मे बिठा-कर शायद चुपचाप रोई। लेकिन मुझसे उन्होने आसू छिपा लिये। फिर मेरे हाथो मे घर की चाभियो का गुच्छा देकर कहा, 'बेटी, तू समझदार है, सयानी है, जब तक तू इस घर मे है, घर को सभालना। मैंने जिस तरह घर को रखा है, उसी तरह तू भी रखना। और ममी को भूल जाना। मैं सिर्फ थोड़े-से रुपये ही लिये जा रही हू, और कुछ नही।' उन्होने अपने हाथ का पर्स खोलकर वे थोड़े-से रुपये मुझे दिखा दिए। मैंने देखा—उनका चेहरा राख के समान मैला और धुधला हो रहा है। वे एक मामूली साड़ी पहने थी। और अपने सब जेवर, हाथ की चूड़िया तक उन्होने उतार दी थी। मैं ममी से लिपट गई। बहुत कहा—ममी, मेरे कुसूर को माफ कर दीजिए, मैं डैडी से अब कोई बात नही कहूगी।—लेकिन उन्होने कुछ जवाब नही दिया। एक बार मेरे सिर पर प्यार से हाथ फेरकर, मुझे सीने से लगाकर वे चली गई डैडी।"

इतना कहकर बेबी फिर दोनो हाथो से मुह ढापकर रोने लगी। मैंने अपने मन मे कहा—तब तो वह मा का दिल साथ ले गई है। एक हल्की सी आशा की झलक मुझे दिखाई दी। मैंने सोचा—मेरे लिए न सही, बेबी के लिए वह लौट आएगी।

लेकिन तीन दिन बीत गए, वह नही आई। बेबी तीन दिन से रो रही है। उसने कुछ भी नही खाया है। मेरा ख्याल था वह बर्मा के घर गई होगी, पर पीछे पता लगा कि वह अपनी एक सहेली के घर पर है। मैंने एक पुर्जा लिखा, केवल दो शब्द—'माया, बेबी पर इस कदर बेरहमी न करो। जब से तुम गई हो, वह न खाती है न पीती है, रो रही है।'

पुर्ज़ा पढकर माया आई। सीधी बेबी के कमरे मे गई। बेबी को गोद मे लिया, बहलाया, उसे खिलाया-पिलाया। मैने सब कुछ जाना-सुना। तबीयत को तसल्ली दी—आखिर वह आ गई। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे मैं फिर से जी उठा। वह दिन-भर बेबी के पास रही। मुझे आशा थी कि रात को वह मेरे पास आएगी और तब किस तरह सुलह की जाएगी—मैं मन ही मन इन बातो पर विचार करने लगा। पर वह शाम को मुझसे बिना ही मिले चली गई। बेबी ने कहा—वह सुबह फिर आएगी। सुबह आई और दिन-भर बेबी के साथ रही। बेबी बहुत खुश थी। मैं भी खुश था, शाम को मैंने आफिस से लौटकर उसके साथ चाय पी। इसके बाद उसने मुझसे बात की।

बात छेडते ही मैंने सुलह के मूड मे कहा

"मुझे बहुत अफसोस है माया, उस दिन मैं गधा बन गया, मैंने तुमसे बहुत सख्त-कलामी की। मुझे तुम माफ कर दो।"

उसने कहा, "यानी तुम उन बातो को वापस लेने को तैयार हो ?"

"ज़रूर, ज़रूर ! मैं वापस लेता हू, मुझे अफसोस है।"

"अफसोस हो सकता है तुम्हे, क्योकि तुम एक कोमल, भावुक हृदय के आदमी हो, पर तुम उन बातो को वापस कैसे ले सकते हो ?"

"क्यो नही ले सकता, बिलकुल वाहियात थी वे बाते !"

"वाहियात तो थी मगर सच भी तो थी !"

मैंने घबराकर माया के मुह की ओर देखा। वह शान्त और गभीर थी। उसने कहा

"इज्ज़त तो तुम्हारी भी है। और मैं जानती हू, तुम उसके लिए बडी से बडी कुर्बानी कर सकते हो।"

"लेकिन तुम्हारा मतलब क्या है ?"

"यही कि तुम्हारी ही भाति मैं भी अपनी इज्ज़त का बहुत ख्याल रखती हू। तुम मुझे और मैं तुम्हे अच्छी तरह जानती हू। हमने अपनी पूरी जवानी मिल-जुलकर एकसाथ एक होकर काटी है। अब न न तुम्हे और न तुम

मुझे धोखा दे सकते हो। यह ठीक भी न होगा।"

"तो तुम ..."

"हाँ, मैं यह कह रही हूं कि अब हम पति-पत्नी की भाँति एकसाथ नहीं रह सकते। हमें अलग होना होगा।"

"लेकिन माया, हम पति-पत्नी की भाँति रह सकते हैं। तुम जानती हो, मैं तुम्हें कितना प्यार करता हूं।"

"प्यार की बात तो मैं भी कुछ कह सकती हूं, पर उसका अब यह मौका नहीं है। फिर यदि प्यार का कुछ उपयोग ही आज करना है तो इस तरह करें कि हमारी मित्रता अटूट बनी रहे। एक-दूसरे को याद करके हम दिल में एक टीस का अनुभव करते रहें।"

"लेकिन हम पति-पत्नी की भाँति क्यों नहीं रह सकते?"

"उस दिन तुमने गुस्सा किया तो मैं तुम्हारे लिए कितनी दुःखी हुई! काश कि हमारे-तुम्हारे बीच कोई न आता! पर अब तो जैसे मैं तुम्हें जानती हूं, तुम मुझे जानते हो। हम दोनों ही अब एक-दूसरे के प्रति वफादार नहीं रहे। मुझे संतोष सिर्फ इतना ही है कि बेवफाई की पहल तुमने की। बहुत दिन से मैं जानती थी कि तुम्हारे सम्बन्ध अनेक लड़कियों से रहते रहे हैं। मैंने मन को बहुत समझाया कि आखिर तुम मर्द हो, मैं औरत हूं। मर्द ऐसा प्राय करते ही हैं। पर अन्त में मेरा आत्म-सम्मान और निष्ठा जाग उठी, और मैंने तुमसे मांग की कि तुम्हें मेरे प्रति वफादार होकर रहना होगा। पर तुमने उसे हँसी में टाल दिया। तुम्हारा ख्याल था कि पत्नी यदि पति से वफादारी की मांग करे तो यह बहुत हलकी-सी, बल्कि सब प्रकार से हास्यास्पद-सी बात है। पर मैं ऐसा नहीं मानती। मैं तो चाहती हूं कि जैसे पत्नी पति के प्रति वफादार है, वैसे ही पति भी पत्नी के प्रति वफादार हो।"

"लेकिन माया, मैंने तुम्हें प्यार करने में कोई कमी नहीं की।"

"तुम शायद उस युग की बातें सोचते हो, जब एक पति की अनेक स्त्रियां होती थीं। वे सब उसके प्रति वफादार ही नहीं होती थीं, पतिव्रता भी होती थीं। उनके लिए पतिव्रत-धर्म की बड़ी-बड़ी कहानियां बना दी गईं।

पतिव्रत-धर्म के बडे-बडे माहात्म्य गढे गए। बडे-बडे धर्माचार्यों ने, समाज के निर्माताओ ने पतिव्रत के एक से एक बढकर क्रूर नियम बनाए, जिनमे एक पति के मर जाने पर उसकी अनेक स्त्रियो को ज़िन्दा उनकी चिताओ पर फूक दिया गया, और उन्हे सती कहकर लोकोत्तर पतिव्रता की डिग्री दी गई।

"यह पतिव्रत-धर्म केवल स्त्रियो ही के लिए था, मर्दों के लिए नहीं। मर्दों के लिए चाहे जितनी पत्निया ब्याहलाने और बिना ब्याह किए चाहे जितनी दासियो, लौडियो, रखेलियो से सहवास करने की उसे छूट थी। तिसपर भी उसके लिए वेश्याओ के बाजार थे, जहा खुले-खजाने भोग-विलास का सौदा होता था।

'तब औरत मर्द की दासी थी, मर्द उसका स्वामी था—इस लोक मे भी, परलोक मे भी। समाज मर्दों का था, धन-सम्पत्ति, घर-बार का वही स्वामी था, वह ज्ञानवान था, सामर्थ्यवान था। उसके लिए दुनिया खुली थी। स्त्री तब उसके लिए उसके भोग की एक सामग्री थी। उस समय स्त्रिया यह बर्दाश्त करती थी कि उनका पति दूसरी स्त्रियो से सहवास करे और वे उनसे ईर्ष्या न करे। ऐसे शास्त्र-वचन भी मैंने देखे है, जहा सौतो से ईर्ष्या न करना भी पतिव्रत-धर्म का एक अग माना गया है। जहा कोढी पति को कन्धा पर लादकर वेश्या के यहा ले जाकर उसके सहवास की सुविधा करना पतिव्रता का धर्म माना गया है। तुम क्या मुझसे भी आज वही आशा करते हो? कोई भी पुरुष आज की स्त्री से यह आशा कर सकता है?"

"किन्तु माया, सुनो तो ..."

'ठहरो जरा, पहले मुझे ही अपनी बात कह लेने दो। पर आज [illegible] था—सामन्ती युग, जब पति पत्नी के माता-पिता-परिजनो को मौत के घाट उतारकर हरण करते थे और उन्हे उन पत्नियो को [illegible] पडता था। कैसे वे रहती थी, उन्हे प्रेम करती थी, हम आजकल की स्त्रिया इन बातो की कल्पना भी नहीं कर सकती। अब तो पत्नी पति की सह-चारिणी है, उसकी जीवन-साथी है। सुख-दुख मे [illegible]

बराबर के भागीदार हैं। अब वे यह नही देख सकती कि पति तो दूसरी स्त्रियो से सहवास करता रहे, और पत्नी उसके प्रति एकनिष्ठ रहे। यदि पति चाहता है कि उसकी पत्नी उसके लिए एकनिष्ठ रहे, वफादार रहे तो उसे भी उसके प्रति वफादार, एकनिष्ठ रहना होगा, अवश्य रहना होगा। स्त्रिया अब न पुरुषो की सम्पत्ति हैं, न भोग-सामग्री, न दासी, न पतिव्रता। वे उनकी जीवन-साथी हैं, मित्र, और उनके व्यक्तित्व की पूरक हैं।"

"खैर, तो अब तुमने क्या करना विचारा है, माया ?"

"जो कुछ कि मुझे करना चाहिए था। तुम मर्द हो, तुमने प्यार को गौण बना दिया और विलास-वासना को प्रमुखता दी—इसी से तुम भ्रमर की भाति नई-नई कली का रसपान करना पसन्द करते हो। मै औरत हू, प्यार को बडी चीज समझती हू। प्यार का मूल्य मुझे ज्ञात है। मैने अपना प्यार उस पुरुष को दिया है जो मेरे प्रति एकनिष्ठ है, वफादार है। ऐसी हालत मे हम पति-पत्नी की भाति नही रह सकते। यदि ऐसा करने का हम ढोग रचे तो हम अपनी ही नजरो मे गिर जाएगे, अपने-आप ही तुच्छ हो जाएगे।"

"माया, क्या तुम पीछे अपनी पुरानी जिन्दगी मे नही लौट सकती ?"

"इसका उत्तर तो तुम्ही ज्यादा ठीक-ठीक दे सकते हो। क्या तुम ऐसा कर सकते हो ? अपनी मै कहती हू कि मै नही लौट सकती। मै प्यार से खिलवाड नही कर सकती—एक बार जिसे दिया, उसे दिया। जब तक वह वफादार है, उससे प्यार लौटा नही सकती।"

"और यदि वह वफादार न निकले ?"

"तो प्यार का वह अधिकारी ही नही रहेगा।"

"माया, मै तुमसे एक गम्भीर बात कहना चाहता हू।"

"कहो।"

"मर्द औरत से कोरा प्यार ही नही चाहता। वह चाहता है प्यार के साथ उसका यौवन-सौन्दर्य उसका जवानी से भरपूर शरीर। मर्द की वासना स्त्री के शरीर मे है, पर स्त्री की वासना पुरुष की शक्ति मे है। पुरुष वही

उम्र तक अपनी शक्ति कायम रख सकता है, पर स्त्री बडी उम्र तक अपने शरीर का यौवन और रूप का जादू कायम नही रख सकती। इसमे स्त्री यदि प्यार के मामले मे पुरुष से स्पर्धा करे तो निश्चय ही उसे घाटे मे रहना होगा। उसमे सामर्थ्य है, उसके पास साधन है, वह नित-नये यौवन खरीदेगा और उनका उपभोग करेगा, परन्तु यौवन बीत जाने पर स्त्रिया असहाय और निरीह रह जाएगी, उनका आश्रय छिन जाएगा, उनका घर लुट जाएगा।"

"यही भय दिखाकर मर्द चाहते है कि स्त्रिया उनके व्यभिचार को सहन करती रहे, और उनकी एकनिष्ठ बनी रहे। पर तुम समाज के बदलते हुए सगठन को नही देख रहे। स्त्रिया अब जीवन-सग्राम मे भी पुरुषो के साथ बराबरी की स्पर्धा करती है। स्त्रिया अब अपने प्यार की दुकान खोलकर ही बैठी नही रहेगी—वे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे पुरुषो के साथ रहेगी। रहा आयु और यौवन की बात, तो आयु के साथ ही साथ प्रेम का स्वरूप भी बदलता रहता है। स्त्रिया पत्नी ही नही है, माताए भी है, और तुम्हे जानना चाहिए कि पत्नी के प्यार की अपेक्षा माता का प्यार बहुत बडा है।"

"माया, मैं अनुभव करता हू कि मैने तुम्हे क्षति पहुचाई है। तुम कहो, मैं तुम्हारे लिए क्या कर सकता हू?"

"तुम मुझपर बेवफाई का इलजाम लगाकर मुझे तलाक दे दो। मुझे उज्र न होगा।"

"न, न, ऐसा मैं नही कर सकता। यदि यही करना है तो तुम्ही मुझे लम्पट करार देकर तलाक का दावा कर दो, मुझे उज्र न होगा।"

"ऐसा मै नही कर सकूगी।"

"तब असद्व्यवहार का दावा करो।"

"असद्व्यवहार तो तुमने मेरे साथ कभी किया नही।"

'तब, जो कुछ भी तुम ठीक समझो। मै तुम्हारी किसी भी इच्छा मे बाधक न होऊगा। पर यह तुम याद रखना—मै तुम्हे कभी नही भूल सकता।'

मै और अधिक कुछ न कह सका। वहा से उठकर बाहर चला आया। मैने आते-आते देखा, माया रो रही थी।

# माया

तलाक मंजूर हो गया और राय से मेरा सम्बन्ध-विच्छेद हो गया। परन्तु पत्नी अपने परिवार में किस तरह फंसी हुई है, इस बात पर तो मैंने कभी विचार ही नहीं किया था। हकीकत तो यह है कि किसी स्त्री का पत्नी बनना एक ऐसी मानसिक दासता है जिसका आदि है न अन्त। लोग उसे सामाजिक दासता कहते हैं। पर मैं पहले मानसिक दासता की ही बात कहूंगी। अपने पति को—श्री राय को—मैंने तलाक दे दिया। बड़ी आसानी से उनसे मेरी छोड़-छुट्टी हो गई। अब न वे मेरे पति रहे, न मैं उनकी पत्नी। उन्होंने न मेरे काम में बाधा दी न मेरे विचारों में। काश कि वे मृत्यु तक मेरे पति रहते, मैं उनकी गोदी में सिर रखकर मरती! वे एक प्रेमी, उदार और खुले मस्तिष्क के पति हैं। उनकी सोहबत में आनन्द और स्वतन्त्रता दोनों ही हैं। बाईस वर्ष हम लोग दूध में मिश्री की भांति मिल-जुलकर एक होकर रहे। हम दो हैं, या कभी दो हो सकते हैं, यह कभी मैंने न विचारा था। परन्तु जैसे भूचाल आते हैं, उल्का आती है, प्रलय होती है, मृत्यु आती है, वैसे ही यह विछोह भी आ गया। यह अनिवार्य था—मेरी और उनकी, दोनों की प्रतिष्ठा और मर्यादा के लिए। कानून ने, समाज ने, बदले हुए दृष्टिकोण ने मेरी सहायता की। बाईस वर्षों के संस्कारों पर भी मैंने काबू पा लिया। मैंने छाती पत्थर की बनाकर ही यह काम किया था। और अब हम प्रत्यक्ष अर्थ में पति-पत्नी नहीं रहे। परन्तु क्या बेबी भी अब मेरी बेटी न रही? यह बात तो न वह मानती है न मेरा मन मानता है। राय भी यह बात नहीं मानते। अब भी वे बेबी

की मा हू, सच्ची मा हू। कानून की कोई धारा, समाज का कोई नियम उससे मेरा विच्छेद नही करा सकता।

तब यह बात मैं नही जानती थी, अब जान पाई हू कि विवाह व्यक्तिगत सम्बन्ध नही है, सामाजिक सम्बन्ध है। नर-नारी का सम्बन्ध बेशक व्यक्तिगत है, पर पति-पत्नी का सम्बन्ध व्यक्तिगत नहीं, सामाजिक है। नर-नारी पृथक् वस्तु हैं और पति-पत्नी पृथक्। हम दोनों—राय और मैं—नर-नारी के रूप मे असन्तुष्ट न थे, सतुष्ट थे। एक मर्द की हैसियत से राय श्रेष्ठ व्यक्ति है, और मेरे नारीत्व पर भी उन्हे कभी कोई असन्तोष नहीं हुआ। असन्तोष हुआ पत्नी-पति के बीच। परन्तु अब मैं सोचती हू, नर-नारी जहा स्वेच्छा से मिल और विच्छिन्न हो सकते हैं वहा पति-पत्नी नहीं, क्योंकि वह अपने परिवार मे धसी हुई है, समाज मे गुथी हुई है। वह अपने स्थान पर स्थिर है, जैसे एक ईट मसाले मे जमकर एक स्थान पर अचल हो जाती है।

मैं बेबी की बात कह रही थी। बेबी अब उन्नीस बरस की है, बच्ची नहीं है। और घर मे वही सबसे अधिक मेरे विरुद्ध थी। राय को बमा के प्रति मेरी आसक्ति का पता बहुत पहले से लग गया था। पर वे आखे चुरा जाते थे, अपनी कमजोरी वे जानते थे। परन्तु बेबी इन बातों का मर्म क्या जाने! उसका मन तो कच्चे दूध के समान स्वच्छ था। उसे अपनी मा की यह अनीति कैसे बर्दाश्त हो सकती थी, और उसने मेरा सात्त्विक विरोध किया। और उसका यह विरोध-भाव तो एक प्रकार से मेरे प्रति प्रगाढ़ प्रेम और भक्ति का ही द्योतक था। यह नहीं कि मैं यह बात नहीं जानती थी। पर किया क्या जा सकता था। मेरे लिए दूसरा चारा न था। मैं यह भी जानती थी कि राय-जैसे पति और लीला-जैसी पुत्री को त्यागना, उनसे विच्छेद करना बहुत कठिन है और एक दिन वह कठिन-दुस्सह काम मुझे करना ही पड़ेगा। मैं धीरे-धीरे अपने मन को इसके लिए तैयार कर रही थी—और शायद समय ने कुछ प्रथम ही वह समय ला उपस्थित [illegible]

सिर्फ बेबी की बात नहीं, और भी रिश्तेदार है। वे तो [illegible]

करते हैं, मेरी इज्जत करते है। कोई मुझे चाची कहता है, कोई बुआ, कोई भाभी, कोई ताई। और आज से नही बाईस बरस से ये रिश्तेदार मेरे ऐसे प्रिय हो गए हैं कि उनके सुख-दुःख मे मुझे बहुत बार हँसना-रोना पडा है। उनमे से बहुतो को देखते ही मैं आनन्द से गद्गद हो जाती हू। बहुतो को देवी के समान प्रिय समझती हू। वे सब अब छूट गए। वे सब अब पराये हो गए। अब उन्हे देखकर मैं गर्व से मुस्करा नही सकती, उनपर अपनी ममता जता नही सकती। कहना चाहिए कि उन्हे देखकर अब शर्म से मुझे मुह छिपा लेना पडेगा। सब नातेदारिया अब खत्म हो गई। क्यो भला ? किस कसूर पर ? उन्होने मेरा क्या बिगाडा था ? तलाक तो मैंने राय को ही दिया। इसी एक बात मे ये सब सम्बन्ध-बन्धन भी टूट गये। मेरी युग की दुनिया उजड गई। परिवार की एक सदस्या थी मैं, सबके बीच जगमगा रही थी, अब उखडकर अकेली रह गई। ओफ, कितनी निराशाजनक, कितनी भयानक बात है !

लेकिन किया भी क्या जा सकता है ! वर्मा बहुत भले आदमी है। मुझे उन्हे देखते ही अपने जीवन के वे दिन याद आने लगते है जब मैं नई ब्याह-कर राय के घर मे आई थी। वर्मा जब मेरी वैसी ही लल्लो-चप्पो मे आव-भगत करते है बात-बात पर प्यार जताते है जैसे कभी राय जताते थे, तो अब मन मे वैसी गुदगुदी नही होती। वह तो उठती हुई जवानी थी, प्यार का पहला दौर था। नया शरीर था, नई उमग थी, नया संसार था। जिन्दगी की दुपहरी चढ रही थी। अब तो वह बात नही है। दुपहरी अब ढल रही है। प्रेम का तूफान तो कब का शान्त हो चुका। अब तो यह सब चोंचलेबाजी मुझे हास्यास्पद सी लगती है। अब तो मैं सोच रही थी कि एक प्रगाढ विश्वास, आत्मीयता, गम्भीर एकता और शान्त दृढता—यह सब क्या एक दिन मे मुझे मिल जाएगा ? कितना तप, कितना त्याग, कितना प्रेम और विश्वास मुझे खर्च करना पडा था लगातार बाईस वर्षों तक, तब कहीं ये दिव्य वस्तुए मुझे प्राप्त हुई थी ! राय ने—राय के व्यक्तित्व ने इन सब बातो का सीधा सम्बन्ध न था। उनका सम्बन्ध तो उस सम्बन्ध [illegible]

पति-पत्नी-सम्बन्ध जुडने पर अपने-आप ही जुट जाता है। यह था परिवार-सम्बन्ध, जहा मेरा एक गौरवपूर्ण स्थान था, जहा मैं केन्द्र मे बैठी थी।

किन्तु अब ? वर्मा से अभी मेरा विवाह-सम्बन्ध नही हुआ। अभी इस काम मे छ मास लग जाएगे। लोक-मर्यादा ही कुछ ऐसी है। परन्तु इस समय का मेरा जीवन तो देखो, कैसा विचित्र बन गया है ! कहने को अब न राय मेरे पति रहे, न वर्मा पति है। दोनो दुनिया की नजर मे मेरे मित्र है। पर दो भिन्न प्रकार के मित्र। एक वर्मा है, जिनसे मै दुनिया की नजर छिपाकर मिलती हू, मित्रता के सम्बन्ध को अतिक्रान्त करके आगे होनेवाले सम्बन्ध की आशा और भरोसे पर। दूसरे है राय, जो जीवन-भर अब तक मेरे प्रगाढ साथी रहे—और अब बिछुड गए, जिनसे फिर मिलने को जी भटकता है, हृदय हुमकता है, पुरानी बाते याद आती है, रह-रहकर मन मे हूक उठती है। पर कसकर मन को रोकती हू—उधर से मन फेरती हू, पर यह मैं ही जानती हू कि इन दोनो ही मित्रो से दो भिन्न व्यवहार—राय से मुह फेर लेना, जिनके साथ एक होकर जीवन बीता और दूसरे के निकट जाना, जो अभी मेरे लिए नये है, ठीक-ठीक जान-पहचाने नही है—कितना कठिन है, कितना दुस्सह है !

अच्छा प्यार ही की बात लो। मुझसे ज्यादा प्यार के वास्तविक रूप को कौन जान सकता है ! मैं औरत हू, पत्नी रह चुकी हू पूरे बाईस बरस, और मा हू उन्नीस बरस से—प्यार की यह त्रिवेणी मेरे कोरे हृदय मे ही नही, आत्मा मे, चेतना मे व्याप्त है।

अब तक मैं एक सच्ची औरत, सच्ची मा और सच्ची पत्नी थी—केवल प्रेम के माध्यम से। प्रेम ही मेरी इन तीनो सचाइयो का मध्य बिन्दु था और लगातार बाईस वर्षो तक अनेको कठिनाइयो पर तपकर जाकर मेरा यह प्रेम एक अगाध आस्था बन गया था—एक ऐसा नाजुक और जबर्दस्त माध्यम कि जिस पर मैं समझती हू, पूरी मानवता कायम रह सकती है।

परन्तु अब मैं एक नई बात सोच रही हू, जो अब तक मेरे दिमाग मे

नहीं आई थी, जिसके इस पहलू को सोचने का मुझे अभी तक अवसर ही नहीं आया था। वह यह कि जीवन में क्या केवल प्यार ही ऐसी महान वस्तु है कि जिसके लिए जीवन बदल दिए जाएं, और ऐसा दुःसाहस किया जाए जैसा मैं कर चुकी हूं? अब मैं कुछ-कुछ समझ रही हूं कि ज्यों-ज्यों प्यार की प्रगाढ़ता बढ़ती जाती थी, और वह निखरता जाता था, तथा शरीर से हटकर आत्मा में, चेतना में प्रविष्ट होता जाता था—त्यों-त्यों वह अपना नया रूप बदलता जाता था। वह रूप था कर्तव्य। सचमुच, मेरा प्यार समूचा ही—औरत का भी, पत्नी का और मां का भी—प्यार न रहकर कर्तव्य बन चुका था, कर्तव्य का रूप धारण कर चुका था। और उसी ने मेरे इस जीवन में उत्तरोत्तर गरिमा, पवित्रता, आत्मविश्वास और दृढ़ता दी थी। उसने मुझे प्रेरणा दी थी कि प्यार केवल इन्द्रिय-वासनाओं को ही तृप्त करनेवाली वस्तु नहीं है, वह जीवन को संसार के साथ दृढ़ आत्मीयता के सूत्र में बांधनेवाली वस्तु भी है, जिससे समाज बनता है, जिससे समाज की निष्ठा बनी है, और जो समाज को मर्यादा में बांधकर सभ्यता के सच्चे रूप में प्रकट करता है। यह काम एक स्त्री या एक पुरुष का नहीं, सबका है। करोड़ों स्त्री-पुरुष युग-युग से प्रेम को प्रगाढ़-प्रगाढ़तर बनाते हुए इसी भांति समाज के चिरन्तन निष्ठा के रूप को सभ्यता के निखार को प्रकट करते रहे हैं।

अब उस प्यार का शायद मैं दुरुपयोग किया है, उसे फिर से इन्द्रियों के भोगों की ओर लगाने की राह पर निकल आई हूं। परन्तु क्या अब फिर से नया यौवन भी मुझे प्राप्त हो सकता है? फिर से उन अल्हड़ उमंगों के तूफानों का मन में ज्वार उठ सकता है? मैं तो आदिम चरम तक प्रेम की वासना का स्वाद तृप्त होकर चख चुकी। अब उसकी भूख रहा है? मैं तो इसने अगली पीढ़ी में जाकर मां भी हो चुकी। प्रेम का यह वात्सल्य रूप भी सब चुक-चुकाकर खत्म हो गया। अब यह बासी कढ़ी में उबाल कैसा? छः महीने बाद मैं नई-नवेली बनने जा रही हूं। नव वधू न सही—बनकर, जैसा अब से बाईस बरस पहले बनी थी। महाराजा न सही, निजाम या

खाई जाएगी, जश्न होंगे। पर मैं अपने चेहरे की झुर्रियाँ कहाँ छिपाऊँगी? अपने ठण्डे, शान्त, तृप्त वातावरण में उत्तेजना और गुदगुदी कहाँ से लाऊँगी? बाईस बरस तक कहना चाहिए पूरी जवानी-भर जिसे भोग के जीवन को छककर, तृप्त होकर भोग चुकी, उसके लिए अब नये सिरे से आकांक्षा, उत्सुकता और उमंग कहाँ से लाऊँगी? इन सब बातों के लिए तो अब मेरी बेबी का काल था। अभी-अभी उस दिन तक हम दोनों—राय और मैं—उसके ब्याह की बातचीत करते रहे हैं। उन बातों में एक आनन्द, उछाह और आकांक्षा तो थी, पर अब भी क्या हम—राय और मैं—इस सुखद विषय पर फिर बात कर सकेंगे? छि-छि, अब तो मेरा ही ब्याह होगा। और शायद बेबी उसे अपनी आँखों से देखे भी! ओह!! शर्म के मारे मैं मर न जाऊँगी?

किन्तु अब तो मैं घर से बेघर होकर चौराहे पर आ खड़ी हुई हूँ। सारे सभ्य संसार से बाहर—बहिष्कृत, अकेली! न मैं किसी की कुछ हूँ, न मेरा कोई कहीं है। क्या कहकर अब मैं समाज में अपना परिचय दूँ? नगर में हज़ारों गृहस्थ मुझे जानते हैं। हज़ारों मेरी प्रतिष्ठा करते थे। श्री राय एक प्रतिष्ठित नागरिक और आफीसर हैं। उनकी प्रतिष्ठा में मेरा भी हिस्सा था। सम्भ्रान्त महिलाएँ उत्सवों में, समारोहों में, चाव से आकर मुझसे मिलती थीं। हँस-हँसकर पूछती थीं—बेबी कैसी है? राय कैसे हैं—और मेरी आँखें गर्व और आनन्द से फूल उठती थीं। पर अब उन बातों से क्या? अब तो मैं किसी को मुँह दिखाना भी नहीं चाहती। घर-घर मेरी चर्चा है, बदनामी है। वे ही महिलाएँ, जो मेरे सम्मान में आँखें बिछाती थीं, मुझे हरजाई कहकर मुँह बिचकाती हैं, घृणा करती हैं। भूले-भटके कोई मुझे देख लेती है तो उँगली उठाकर कहती है—यही है वह आवारा औरत! वे मुझे आवारा कहती हैं, हरजाई कहती हैं, मेरे चरित्र पर कलंक लगाती हैं। परन्तु मैं जानती हूँ—यह सब झूठ है। हाँ, मैंने दुःसाहस किया है जो दूसरी स्त्रियाँ नहीं करतीं—नहीं कर सकतीं। चुप-चाप पति के व्यभिचार को सहती हुई घर में बैठी जन्म बिताया करती हैं।

काश, मैं भी वही भेड-सी स्त्री होती तो समझती ! औरत का जन्म ही घुट-घुटकर मरने और सहन करने के लिए होता है। सभी मर्द अपनी-अपनी औरतो की छाती पर मूग दलते हैं। इसमे नई बात क्या है ! पर मै तो उन औरतो से भिन्न प्रकार की हू। मैं यह कैसे बर्दाश्त कर सकती हू ? मैं औरत की जात को न केवल यही—कि वह पुरुष के बराबर है—मै यह भी मानती हू कि वह पुरुष से बढकर है। मैं यह भी जानती हू कि समाज का बाहरी बन्धन चाहे जैसा हो, परन्तु जीवन मे औरत मर्द के अधीन नही है। मर्द ही औरत के अधीन है।

एक बात यह कही जा सकती है कि आत्म-सम्मान के नाम पर राय को त्याग देना—उनसे सम्बन्ध-विच्छेद कर लेना मेरे लिए उचित ही था, मैंने ठीक किया, परन्तु अब मुझे दूसरे किसी पुरुष से विवाह नही करना चाहिए, एकाकी जीवन व्यतीत करना चाहिए। इससे लोगो की नजर मे मै ऊची उठ जाऊगी। परन्तु इस पोच और लचर दलील को मै ठोकर मारती हू। इसका तो साफ-साफ यही अर्थ है कि राय के अपराध का दण्ड मै भोगू। राय के मार्ग से सब विघ्न-बाधा हटाकर मैने उन्हे खुलकर मौज-मजा करने के लिए छुट्टी दे दी, सुविधाओ की राह प्रशस्त कर दी—और अब मै स्वय सूली पर टगी रहकर, समाज के अग से कटी रहकर अपना शेष जीवन व्यतीत कर दू !

ऐसा मै नही कर सकती, क्योकि मै सबसे अधिक अपना ही तो प्यार करती हू। अपने को मै दुनिया मे सबसे अधिक प्रिय मानती हू। त्याग और निष्ठा के नाम पर मै आत्मपीडा से भी विमुख नही होना चाहती, पर मै अकारण ही निराशावाद, आत्मपीडा और निरीह जीवन को भी नही पसद करती। मै औरत हू, और मुझे एक मर्द चाहिए। यह बात मै [illegible] आवश्यकता और रुचि के अनुरूप नही कहती हू, [illegible] नारी-स्वभाव का [illegible] ही है। आरम्भ युग मे जब सभ्य समाज न बना था—नर-नारी यौन-सम्बन्ध मे उसी प्रकार स्वतन्त्र थे जिस प्रकार पशु-पक्षी। [illegible] चाहे पुरुष से यौन-सम्बन्ध कर सकती थी, उन [illegible] थी। [illegible]

एक पुरुष से अनुबन्धित नही थी । परन्तु सभ्यता की मर्यादा ने एक पुरुष के लिए एक स्त्री, और एक स्त्री के लिए एक पुरुष का बन्धन लगा दिया । स्त्री मे सभ्यता और समाज के इस बन्धन को मान्य करके मैं सभ्यता की सीमा मे ही अपने लिए एक अनुगत, प्रिय और अपनी पसन्द का पुरुष मागती हू । यह मेरा अधिकार है । इसे मैं नही त्याग सकती—किसी भी प्रकार से नही त्याग सकती ।

आप कह सकते है कि अब जवानी बीत गई । गदहपचीसी खत्म हो गई । उतरती उम्र है । अब ये सब बाते शोभनीय नही है । ठीक है । आप मेरी उम्र की सब स्त्रियो से यही बात कहिए । उन्हे उनके पतियो से, परिवार से, परिजनो से बहिष्कृत कर दीजिए तो मैं इस अभिलाषा को एक समाज का नियम मानकर स्वीकार करूगी । यदि सभी स्त्रियो को उनके सामाजिक जीवन का आनन्द-भोग करने का अधिकार है, तो मुझे क्या नही है ? मैंने कौन-सा अपराध किया है ?

इसके अतिरिक्त विरक्ति से मुझे घृणा है । मैं त्याग के महत्त्व को जानती हू—पर इतना ज्ञान भी रखती हू कि त्यागने की वस्तुओ को ही त्यागा जाए और ग्रहण करने योग्य वस्तुओ को ग्रहण किया जाए । प्रात - काल उठते ही मैं मल-मूत्र त्याग करती हू, और पीछे फिरकर उस ओर नही देखती । अब आप कहे कि मैं ससार को त्याग दू, सन्यासिनी बन जाऊ, आपके भोगो को देखती रहू, कलपती रहू, अपने भाग्य को दुर्भाग्य मे परिवर्तित कर दू—तो यह किसी कमजोर मूर्ख स्त्री से ही सभव हो सकता है, मुझसे नही ।

मैं समाज के सर्वोच्च शिखर पर रहूगी, प्रतिष्ठा और आनन्द के सर्वोच्च आसन पर बैठूगी, और जीवन के सब प्राप्तव्यो को प्राप्त करूगी । जिस आत्मसम्मान और आत्मनिष्ठा के नाम पर मैंने अपना घर, पति, पुत्री, प्रतिष्ठा और समाज को त्यागा है, उन्हे मैं छोड़गी नही—प्राप्त करूगी, और उनकी प्राप्ति के लिए प्राणो की बाजी लगा दूगी ।

वर्मा एक निरीह पुरुष है, यह मैंने देखा है । वे एक प्रतिष्ठित नागरिक

भी हैं। उनका प्रेम गम्भीर है और वे एक जरूरतमंद आदमी हैं। वे उस उम्र को पहुंच चुके हैं जिसमें मर्द के लिए औरत खिलवाड़ की नहीं, काम की वस्तु रह जाती है। ज्यों-ज्यों वे मेरे निकट आते गए हैं, मैं उनके प्रेम की गहराई और सचाई भी परखती गई हूं। आरम्भ में मैं उनसे डरती थी, फिर उनसे मेरे मन में प्रेमभाव उत्पन्न हुआ—और अब तो दयाभाव भी है। वे मेरे लिए सब-कुछ कर गुजरने पर आमादा हैं। फिर भी मेरा मन अब इस स्थान पर आ पहुंचने के बाद कांप रहा है। इसलिए नहीं कि वर्मा मुझसे विश्वासघात करेंगे। ऐसा करके वे मेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते हैं। अपना ही आश्रय खो देंगे। मैं जानती हूं—उन्हें मेरी आवश्यकता है, भारी आवश्यकता है। उनके जीवन में मेरी कमी है। वे समझते हैं कि मेरे द्वारा उनका जीवन पूर्ण होगा, और मैं जैसे राय के प्रति एकनिष्ठ रही, उनके प्रति भी रहूंगी—जब तक कि वे मेरे प्रति एकनिष्ठ हैं।

बहुत पुरुष लम्पट वृत्ति के होते हैं, जैसे कि राय हैं। उनकी तृप्ति कभी आसानी से नहीं होती। वे प्रेम में और वासना में अन्तर नहीं समझते। उनका प्रेम वासना की मंजिल पर नाचता है। पर वासना शारीरिक उद्वेग है और प्रेम मानसिक। वासना-पूर्ति के बाद ग्लानि उत्पन्न होती है, पर प्रेम की न कभी पूर्ति होती है न तृप्ति, और न ग्लानि का समय आता है। राय पति की हैसियत से भी और पुरुष की हैसियत से भी एक अच्छे व्यक्ति हैं। दोनों के ही उपयुक्त गुण उनमें हैं, परन्तु वे आदर्श नहीं हैं। उनके साथ एक रूढ़िवादी पत्नी का निर्वाह हो सकता था जिसका अपना कोई व्यक्तित्व न हो, पर मुझ-जैसी औरत का नहीं हो सका। [illegible] और उनके सत्य को जानती हूं। फिर भी मैं [illegible] उनसे [illegible]। [illegible] आदर्श पति प्रमाणित हों। उनका [illegible] अवश्य [illegible] अपनी इच्छा नहीं है परन्तु मन उनके [illegible] में भी न [illegible], न [illegible]। उनके [illegible] गुण न [illegible] और [illegible] और न अब पति-रूप में उनका वरण करने पर आमादा है।

# रेखा

माया ने आखिर वर्मा से सिविल मैरिज कर ली। राय ने उनके सम्बन्ध मे बहुत-बहुत बाते की हैं। ऐसा प्रतीत होता है, राय का दिल टूट गया है। वे जरूर ही माया को प्यार करते थे। वह सब प्यार अब उन्होंने मुझे ही समर्पित कर दिया है, वचन से भी और चेष्टा से भी राय यही प्रमाणित करते हैं। मैं उनसे प्यार करती हू या नही—यह मैं नहीं कह सकती। मैंने बहुत बार मन से इस बात का उत्तर मागा है—पर हर बार दिल धडकने लगता है, उत्तर नही मिलता। फिर भी इतनी बात तो है कि जब उनके आने का समय होता है तो एक विचित्र गुदगुदी मन मे होने लगती है, और यदि आने मे जरा भी देर हो जाती है तो बेचैनी होने लगती है, ऐसा प्रतीत होता है। जैसे जूडी चढनेवाली है। उनके आने पर प्रसन्नता होती है,यह बात मैं नही कह सकती। शायद प्रसन्नता नही होती, भय होता है। किन्तु भय किससे ? दत्त से ? नही, इस बात मे वे पूरे सावधान हैं कि वे उसी समय आते हैं जब राय के घर मे होने की सम्भावना नही होती। फिर भी भय है। यह भय न मुझे दत्त से है, न राय से—अपने ही से है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मैं अपने ही से चोरी कर रही हूँ, अपने ही को ठग रही हू। परन्तु उस भय के साथ एक अजीब उत्तेजना भी, एक आनन्द-स्पन्दन भी मै अनुभव करती हूँ। उनके अंकपाश मे अवश्य मुझे एक आनन्द मिलता है। उस आनन्द की बात कही नहीं जा सकती है। उस आनन्द से डर नहीं होता—नशा होता है। वह न त्यागा जा सकता है न ग्रहण किया जा सकता है। बहुधा मैं राय के जाने के बाद रोई हूँ, मन से ग्लानि भी हुई है कि

दूंगी—नहीं, अब न आया करें। पर मैं ऐसा नहीं कर सकी, शायद कर सकती भी नहीं। मैं बेबस हो जाती हूं। जैसे बीन की स्वरलहरी पर मस्त होकर नागिन लहराती है, उसी भांति मैं भी लहरा उठती हूं।

दत्त के अंकपाश में मैंने हर्षातिरेक प्राप्त किया है। वे सब बातें मुझे अब भी याद हैं। उन्हें याद करके मुझे अब भी रोमांच हो जाता है। मैं चाहती हूं, दत्त के अंकपाश में फिर से वही अनिर्वचनीय आनन्द, वही हर्षातिरेक, वही पूर्ण तृप्ति, वही निश्चिन्त सुख प्राप्त करूं, पर नहीं कर पाती। दत्त का अंक तो अब भी मुझे उपलब्ध है। वे पहले की अपेक्षा अब मेरा ज्यादा ख्याल रखते हैं। शराब भी कम कर दी है। प्रेमालाप भी करते हैं। सुख भी देते हैं। स्वीकार करती हूं, शरीर-सुख देने की सामर्थ्य उनमें राय से बहुत अधिक है। राय की अपेक्षा वे सुन्दर भी अधिक हैं, धनवान भी अधिक और शायद प्रेमी भी अधिक हैं। वे मेरे हैं, मैं उनकी हूं। उनके और मेरे बीच में न कोई बाधा है, न भय, न रोकथाम है। जब वे निकट नहीं होते हैं, मैं उनका ध्यान करती हूं। पर उनके निकट रहने पर राय की स्मृति मेरी चेतना को आक्रान्त कर जाती है, आहत कर जाती है। उनके अंकपाश में मैं कटी पतंग के समान ढेर होकर पड़ जाती हूं। उनकी किसी अभिलाषा में मैं बाधा नहीं देती, पर यह मैं देखती हूं कि [illegible] सन्तुष्ट नहीं होते। उन्हें चाहिए मेरा आग्रह, प्रवृत्ति, [illegible] मांग की भूख। यह सब अब कहां है? कहां से दूं मैं उन्हें ये सब अलभ्य पदार्थ, जिन्हें पाकर मर्द की मर्दानगी कृतकृत्य हो जाती है, तृप्त हो जाती है?

मैं जानती हूं, पुरुष का स्त्री से यह प्राप्तव्य है। पुरुष दाता होने का [illegible] दम्भ ही नहीं रखता। वह प्रकृत दाता है भी। वह आरम्भ [illegible] निभाता है और जब स्त्री लेना सीख जाती है—सीखकर वह अधिकाधिक लेने को पागल हो जाती है, तो वह [illegible] देता है, उसकी मर्दानगी निखरती है। [illegible] आनन्द [illegible] उससे सहस्र गुणा आनन्द पुरुष को देने में आता है, और [illegible] हूं जब स्त्री इतना सोचती है कि पुरुष [illegible]

सकता है, तब भी वह राई-रत्ती सब कुछ दे डालने ही मे चरम सुख की अनुभूति करता है।

इस दासत्व से ही वह स्त्री के स्त्रीत्व को खरीदता है। वह अखिल संसार मे विचरण करता है, और स्त्री उसकी प्रतीक्षा मे आखे बिछाए बैठी रहती है, आतुर-व्याकुल। दत्त अभी देने मे समर्थ हैं। बहुत समर्थ है। देय पदार्थ उनके पास बहुत है। वे अंधाधुंध देते हैं। पर जो कुछ वे देते है वह मेरे इधर-उधर चारो ओर बिखर जाता है, मैं उसे समेट नही पाती हू, जैसे पहले समेटती थी, पाकर हर्षित होती थी—अब नही होती हू। दत्त जैसे यह सब देखते हैं। औरत यदि मर्द की मर्दानगी को सिर पर उठाकर उन्मत्त होकर हर्षनृत्य न करे, तो मर्द के दान का माहात्म्य भी क्या रहा! मर्द दे और औरत उसे ग्रहण न करे, बखेर दे, बिखरा पड़ा रहने दे, तो मर्द यह सहन नही कर सकते। देने की यथार्थता लेने मे ही है। बिना लिये देना व्यर्थ है। लेने का सुख जहा नही है—वहा देने का सुख भी नही है। वही मैं देखती हू। दत्त बडे उत्साह से मुझे देय देते है। बड़ा दुर्लभ है वह दान—ऐसा सौ मे से एकाध स्त्री को भी मिलना दुर्लभ है। जिसे मिलता है वह कृतकृत्य हो जाती है, उसका नारीत्व धन्य हो जाता है। पर जब वे मुझे लेने मे एकदम उदासीन देखते है तो वे भी उदास हो जाते है। और उनका वह अवसाद भी कितना दयनीय है कि कभी-कभी तो डर-कर रो देती हू! अब गुसलखाने से उनके गुनगुनाने की आवाज़ नहीं आती। अब बिजलियो की कडक और बादलो की गर्जना उनके हास्य मे नही दीख पडती। अब तो उनकी हँसी बरसाती धूप की भांति अस्थिर होती है। ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे वे जीवन से थक गए है अभी से—इसी उम्र मे। यद्यपि अभी उन्होने जीवन का भोग भोगा ही क्या है!

बहुधा वे प्रद्युम्न के साथ बाते करते-करते रात को सो जाते है और सुबह उसे जगाकर उसकी मीठी-मीठी बाते सुनते है। वे पति कम और पिता अधिक बन गए है। पर न जाने क्यों मैं न पत्नी रही हूँ न माता। अब क्या अंजाम होगा मेरा?

राय अपने काम में बहुत सावधान हैं। वे सदा अनुकूल समय पर आते हैं। जब वे आफिस चले जाते हैं, प्रद्युम्न स्कूल चला जाता है। नौकरों को मैं दो घण्टे की छुट्टी दे देती हूं, और स्वयं ड्राइंग-रूम में चली जाती हूं। तभी वे आते हैं, चुपचाप, और मैं उनमें खो जाती हूं। बहुधा वे एक घंटा मेरे पास रहते हैं, पर इस एक घण्टे में कभी-कभी एकाध बात होती है। बातचीत प्यार-मुहब्बत की नहीं, आगामी मिलन-संकेत की। और कभी वह भी नहीं। वे जिस तेजी से चुपचाप आते हैं, उसी तेजी से चले जाते हैं। और उनके जाने के बाद उन्होंने जो कुछ दिया उसे बटोरने, सहेजकर रखने की चेष्टा करती हूं, पर न बटोर सकती हूं, और न सहेजकर रख सकती हूं। वे प्यार देते हैं, सुख देते हैं, तृप्ति देते हैं, पर उनके जाते ही वह प्यार भाप बन जाता है, सुख डंक मारने लगता है और तृप्ति प्यास को भड़का देती है। मन होता है—बस, अब नहीं चाहिए। पर उनके आने की प्रतीक्षा में मैं अधीर हो जाती हूं। ऐसी प्रतीक्षा मैंने दत्त की कभी नहीं की। [illegible], दत्त को मन से प्यार किया। बहुत—बहुत—बहुत। पर राय का [illegible]। बहुत सोचा, पर भीतर से द्वार बन्द किया, प्यार की आवाज सुनाई न दी। प्यार नहीं करती हूं तो क्या करती हूं—यह मैं नहीं जानती। इतनी उत्कट प्रतीक्षा कैसे करती हूं, यह भी नहीं बता सकती। अपने को किस [illegible] त्याग देती हूं, यह भी नहीं जानती। किन्तु इतना जानती हूं कि यह सब करके सुखी नहीं होती, निश्चिन्त नहीं होती, तृप्त नहीं होती। मुझे लगता है, मैं [illegible] मन अपना खो दिया है, और न आत्म-सम्मान रख रही हूं। फिर भी उनमें न अपने का विश्वास नहीं कर पाती हूं।

चम, आकर टकराते है, घाव कर जाते है और चले जाते है।

मैं नही जानती कि दत्त को उनपर सन्देह है या नही—शायद नही है, शायद है। छुट्टी के दिन वे दत्त के सामने आते है। तब पहले-जैसी चुहल करने की चेष्टा भी करते है, पर वह बन नही पाती। अपनी घबराहट को वे प्रद्युम्न मे मन बहलाकर छिपा लेते है। मैं भी तो अब उनसे बात नहीं करती। दूर ही दूर रहती हू। क्या बात करू भला? अपने को कैसे ढा? इतनी प्रवचना कहा से लाऊ? मैं जानती हू—दत्त बड़े प्रभावशान पुरुष हैं। वे सरलचित्त हैं और उदार हैं। बहुत बार ऐसी चेष्टाए हम लोगो [illegible] उनके सामने हुई। मैं डर गई कि कही उन्होने देख तो नहीं लिया। पर नही। मैंने उनके मन मे विकार नही देखा। फिर भी वे अब [illegible] प्रकार घुल-मिलकर बात नही करते। उनकी बातचीत का सिलसिला [illegible] टूट जाता है, जैसे उनकी हँसी तुरन्त गायब हो जाती है। [illegible] बीच वे अधिक गम्भीर हो गए हैं। कभी-कभी मैं उनकी गम्भीरता [illegible] ही भयभीत हो उठती हू। पर जैसे वे मेरे प्रेम की जाच-पड़ताल नहीं [illegible] उसी भाति मेरे भय की भी नही। मैं यही सोचती हू, जिस दिन [illegible] फोड होगा, उस दिन क्या होगा? गुस्सा उनका बड़ा भयानक है। वे [illegible] कम गुस्सा करते है, पर जब करते है तो प्रलय उपस्थित हो जाती है।

हाय, यह मैंने कहा का रोग बना लिया! मन आग [illegible] जिसमे जरा-सी असावधानी से भी भस्म हुआ जा सकता है। [illegible] गृहस्थी थी, हम पति-पत्नी दो थे—दोनो दोनो का प्यार [illegible] आ गया चाद-सा बेटा, प्यार का सुफल फल। पर इसी बीच यह पत्थर मेरे जीवन मे घुस गया। अब मैं करू भी क्या [illegible] जितना [illegible] हू उतना ही यह मुझे आक्रान्त करता है। किसी दिन यह [illegible] पर डालेगा। अब तो मैं अपनी ही नजर मे [illegible] कालेज मे जब मैं पढ़ती थी तब हम लोग वाद विवाद [illegible] पुरुषो के समान अधिकारो पर बहस करते थे। [illegible] समान अधिकार की जना और समर्थक थी। पर तब तो [illegible] —

स्त्री-पुरुष समान नहीं हैं। सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र खुले संसार में विचरण करने-वाला बल और साहस का अधिष्ठाता, संसार का नेता पुरुष! और शरीर तथा हृदय की दुर्बल, जन्म-जन्मांतर से दासता और सृष्टि के बन्धनों में फंसी असहाय अबला नारी—भला कैसे पुरुष की बराबरी कर सकती है! मैं तो देखती हूं, नारी कोई प्राणी नहीं है, पुरुष का भोजन है। वह उसे खा भी सकता है और बखेर भी सकता है। वह पर-स्त्री को आसानी से चुरा सकता है। उसकी सामाजिक स्थिति में कोई अन्तर नहीं आता। किन्तु स्त्री पर-पुरुष को चुराकर कहां रखे भला? उसे तो प्रकृति ने ऐसे बन्धन में बांधा है कि नारी का माल छिपा नहीं सकती। वह जगजाहिर हो जाता है। नहीं, नहीं, स्त्री पुरुष की समानता का दावा नहीं कर सकती। मैं [illegible] रही हूं न। मैं अभी से अपने को दया की भिखारिन समझने लगी हूं—इनकी दया की भी और राय की दया की भी। [illegible] प्यार की भी। प्यार क्या मुझे मिला नहीं? खूब मिला—इनका भी और राय का भी। पर अब, जब वह प्यार ही मुझे [illegible] रहा है। अब [illegible] दया करके मुझे छोड़ दें, [illegible] नहीं, [illegible]।

और जीवन की सीधी-सरल राह—सहस्राब्दियो से समाज के नियन्ता मनीषियो ने जिनका निर्माण किया था—छोडकर मैं कटीली झाडियो म भटक गई। कौन अब मुझे राह दिखाएगा ? कौन मुझे सीधी राह पर लाएगा ? कौन मेरा हितू है ? कौन मेरा सहायक है ? अरे, मैं तो खुद ही अपनी दुश्मन बन गई ! मैंने अपने ही हाथ से अपनी राह मे कुए खोद लिए। भोजन मे रेत मिला लिया, अधकार जीवन को अपने मे समेटना-सा आ रहा है, भगवान् ही जानता है कि अजाम क्या होगा !

स्त्री-पुरुष समान नही है। सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र खुले ससार मे विचरण करनेवाला धन और साहस का अधिष्ठाता, ससार का नेता पुरुष ! और शरीर तथा हृदय की दुर्बल, जन्म-जन्मातर से दासता और सृष्टि के बन्धनो मे फसी असहाय अबला नारी—भला कैसे पुरुष की बराबरी कर सकती है ! मैं तो देखती हू, नारी कोई प्राणी नही है, पुरुष का भोजन है। वह उसे खा भी सकता है, बखेर भी सकता है। वह पर-स्त्री को आसानी से चुरा सकता है। उसकी सामाजिक स्थिति मे कोई अन्तर नही आता। किन्तु स्त्री पर-पुरुष को चुराकर कहा रखे भला ? उसे तो प्रकृति ने ऐसे बन्धन मे बाधा है कि चोरी का माल छिपा नही सकती। वह जगजाहिर हो जाता है। नही, नही, स्त्री पुरुष की समानता का दावा नही कर सकती। मैं अपने ही को देख रही हू न। मैं अभी से अपने को दया की भिखारिन समझ रही हू—दत्त की दया की भी और राय की दया की भी। प्रकृत अधिकारिणी तो मैं प्यार की थी। प्यार क्या मुझे मिला नही ? खूब मिला—दत्त का भी और राय का भी। पर अब, अब वह प्यार ही मुझे नाग बनकर डस रहा है। अब तो वह दया करके मुझे छोड दे, डसे नही, यही मेरे लिए बहुत है।

अब तो मुझे ससार मे भय ही भय नजर आ रहा है। भय की काली छाया हर समय मुझे घेरे रहती है। चाहती हू, राय से खुलकर बात करू। नही तो उन्हे यहा न आने को कहू, सब सम्बन्ध तोड दू। उन्हे दिल से निकाल फेंकू। अभी हुआ ही क्या है ! अभी तो सब-कुछ पर्दे मे ही है। अब भी मैं सच्चे मन से दत्त को प्यार करू तो मैं निहाल हो सकती हू। परन्तु पता नही, यह कौन शैतान मुझ पर सवारी गाठ रहा है, कैसा नाश मुझ पर व्यापा है कि मुझे प्रकाश का सीधा रास्ता नही दिखता है। देखती हू कि जहर है, पर खाए जा रही हू। सच है—पतन की राह फिसलनी होती है। एक बार फिसलने पर फिर सभलना मुश्किल है। अब तो दिन मे घाव खा बैठी। मन मे चोर घुस बैठा। शरीर मे [illegible] का दाग लग चुका। मेरा नारी-जीवन मलिन हो गया। पत्नी की पवित्रता भी खो चुकी।

और जीवन की सीधी-सरल राह—सहस्राब्दियों से समाज के नियन्ता मनीषियों ने जिनका निर्माण किया था—छोडकर मैं कटीली झाडियों में भटक गई। कौन अब मुझे राह दिखाएगा? कौन मुझे सीधी राह पर लाएगा? कौन मेरा हितू है? कौन मेरा सहायक है? अरे, मैं तो खुद ही अपनी दुश्मन बन गई! मैंने अपने ही हाथ से अपनी राह में कुए खोद लिए। भोजन मे रेत मिला लिया, अधकार जीवन को अपने में समेटता-सा आ रहा है, भगवान् ही जानता है कि अजाम क्या होगा!

# लीलावती

आज अकस्मात् ही मिसेज़ दत्त मेरे यहा आईं। इससे पहले मैंने एक बार उन्हे देखा था, जब ममी के साथ मैं उनके घर गई थी। उन्होंने मुझे बहुत प्यार किया था—ममी से भी ज्यादा। बहुत हँसी थी वे उस समय। बडी भली लग रही थी उनकी हँसी। बडी प्यारी है मिसेज़ दत्त। म उन्हे तब से भूली नही हू। भूल सकती भी नही हू। उसके बाद आज अकस्मात् मेरे यहा आई। पापा तो आफिस गए थे। नौकर-चाकर सब काम से फारिग होकर छुट्टी कर गए थे। सिर्फ मैं अकेली बैठी, किसी मैगजीन के पन्ने पलट रही थी। जब से ममी गई हैं, मेरा मन घर मे नही लगता। उन्होंने वर्मा साहब से शादी कर ली। कितनी शर्म आई मुझे! पता नही, ममी को शर्म क्यो नही आई? पापा ने बहुत समझाया, मैंने भी बहुत जिद की, पर ममी ने एक न सुनी। ऐसा ज़िद का भूत उनपर सवार हुआ। शादी के बाद वे नही आईं। कैसे आती? अब वे मेरी ममी नही रहीं। मैंने जब पापा से कहा, "पापा, अब क्या वे मेरी ममी नहीं रहीं?" तो उन्होंने जैसे एक फीकी हँसी हँसकर कहा, "क्यो नही बेटी, वह तुम्हारी ममी है। कहीं भी रहे, इससे क्या?"—सचमुच, सब बाते मेरी समझ मे आज भी नहीं आ रही है। कैसे उनसे यह सब करते बना! कितना प्यार करती थीं वे मुझे! सच कहती हू, अब भी करती है। मैं उन्हे जानती हू। पर फिर भी वे मुझे छोड गईं। मैं अकेली रह गई। पापा अकेले रह गए। पर यह उन्होंने कुछ भी तो नहीं सोचा। उनके बिना भला पापा रह सकते है? देखो—कैसी हालत हो गई है उनकी। न कपडे का ध्यान, न

खाने-पीने का। सभी बन्दोबस्त तो ममी करती थी। जब उनके आफिस जाने का वक्त होता था, वे उनके धुले कपडे निकालकर रख देती थीं। टाई अपने हाथ से बाधती थी। नया रूमाल तहा कर जेब मे रख देती थी, और जैसे रस्सी मे बधी हो, इस तरह खिची हुई दरवाज़े तक चली आती थी। और जब उनके वापस घर आने का समय होता था, उससे प्रथम ही गर्म-ताज़ा नाश्ता तैयार करती थी। मेरे कपडे बदलती थी। बचपन ही से वे मुझे गुडिया की तरह सजाकर उनके सामने लाती थी। बस, एक उन्ही की बात उनकी जबान पर रहती थी। सो अब वे इस तरह चली गई निर्मोही होकर !

मुझे घर सूना लग रहा है। पापा ने कहा भी कोई दाई रख लो। दाई भला क्या करेगी ? अब तो पापा की सब जिम्मेदारी मेरे ही ऊपर है। पर ममी-जैसी फुर्ती, चुस्ती और सुघडाई मैं कहा से लाऊ ? ममी ने तो लाड-प्यार मे मुझे मिट्टी कर दिया था। पर मै पापा को भला इस तरह निरीह-निराश्रित कैसे छोड सकती हू ! मैं उन्हे आफिस भेजकर कालिज जाती हू, और आकर सबसे पहले उनके लिए नाश्ता बनाती हू। उनकी हर बात का पूरा ध्यान रखती हू, पर फिर भी उन्हे पहले की भाति हसा नही सकती, उनकी उदासी दूर नही कर सकती।

आज छुट्टी थी। पापा कही दौरे पर गए है। परसो आएगे। उदास मैं भी ज़रा ढीली पडी हुई थी। ममी की याद कर रही थी और कभी-कभी एकाध आसू आ जाता था। उसे योही पोछ लेती थी। कोई मैगज़ीन के पन्ने पलट रही थी। अकस्मात् ही आकर उन्होने मुझे अपने भुज-पाश मे बाध लिया। पहले तो मैं घबरा गई। बाद मे उन्हे देखा। नमस्कार किया। परन्तु उन्होने मुझे छोडा नही। गोद मे लिए बैठी रही जैसे बच्चे को लेकर मा बैठती है। कितना अच्छा लगा मुझे क्या कहू !

उन्होने हँसकर कहा, "अकेली बैठी किसकी याद कर रही थी रानी ?"

"आपकी !" मैने भी हँसते हुए कहा।

"सच ? ममी की नही ?"

"आप मेरी ममी हैं !" न जाने कहा से एक खीझ मन से बाहर निकल आकर जबान पर बैठ गई, ममी की याद से और मेरे मुह से यह वाक्य निकल गया। उन्होने सुनकर मुझे चूम लिया। आहिस्ता से कहा, "काश, मैं तुम्हारी ममी होती ! कितनी प्यारी बिटिया हो तुम ! कैसे तुम्हे छोडकर चली गई तुम्हारी ममी !" मेरी आखो मे आसू छलछला आए।उन्होने आसू पोछकर कहा

"अब तो तुमने मुझे ममी कह ही दिया !"

"आप मेरी ममी है, इतना प्यार तो ममी ही कर सकती हैं।" मैंने कहा और उनके कण्ठ मे अपनी भुजाए डाल दी।

इसके बाद बहुत-सी बाते हुई। बातें अधिक पापा के सम्बन्ध मे थी। वे खोद-खोदकर पूछने लगी, "कभी तुम्हारे पापा भी याद करते हैं तुम्हारी ममी को, बेबी ?"

मैं क्या जवाब देती भला ! मैं चुप हो गई। पापा की बात सुनने को वे जैसे बहुत उत्सुक हो रही थी। घूम-फिरकर फिर उन्ही की बाते करती थी। उन्होने पूछा, "क्या तुम्हारी ममी तुम्हारे पापा को बहुत प्यार करती थी ?"

"ओह, बहुत बहुत !"

"और तुमको ?"

"मुझे भी।"

"फिर ऐसी सुन्दर बिटिया, ऐसे घर और पति को छोडकर वे चली क्यो गई ?"

मेरा मन कुण्ठा से भर गया यह बात सुनकर। भला मेरे पास इन बातो का क्या जवाब था ! पर धीरे-धीरे उन्होने मुझसे पापा की बहुत बातें जान ली। पापा ममी को याद करके रोते है। रात को देर तक सोते नही है। जीवन की हर बात से उदासीन हो गए है। वे सब सुनती रही, चुपचाप सुनती रही। फिर उन्होने एकाएक पूछा, "बेबी, तुम्हारे पापा को भला और भी कोई प्यार करता है ?"

मैं उनका मुह ताकने लगी। मेरी समझ मे बात नही आई।

उन्होने कहा, "यदि कोई उन्हे उतना ही प्यार करे जितना तुम्हारी ममी करती थी, तो तुम उसे क्या कहोगी?"

"ओह! मै भी उन्हे प्यार करूगी। पर ममी-जैसा प्यार पापा को कौन करेगा?"

"यदि मैं करू?"

मैंने अकचकाकर उनके मुख की ओर देखा। वह लाल हो रहा था और आखे सावन-भादो के बादलो की भाति भरी हुई थी। मैं कुछ समझी और कुछ न समझी। 'ओह' कहकर उनकी गोद मे गिर गई।

और तब उन्होने खोलकर सब बाते मुझे धीरे धीरे बता दी। अभी मैंने दुनिया नही देखी थी, पर मैं उनकी बाते सब समझ गई। अब मैं जान गई कि पापा उन्हे प्यार करते है और वे पापा को प्यार करती है। इस काम मे कुछ बाधाओ की ओर उन्होने सकेत किया जिन्हे मैं नही समझ सकी। पर प्रेम-प्यार की बाते सब समझ गई। सुनकर कुछ भय, कुछ आशका, उद्वेग मेरे मन मे उत्पन्न हुआ। अन्त मे उन्होने कहा, "तुमने मुझे ममी कहा है। भाग्य ने तुम्हे ममी की गोद से गिरा दिया है। मैं जानती हू, तुम्हारी ममी के जाने का तुम्हे भी सदमा है और तुम्हारे पापा को भी है। और अब तुम बच्ची नही हो—सब बाते समझती हो। जैसे भाग्य ने तुम्हारी ममी से तुम्हारे पापा का बिछोह करा दिया, उसी भाति भाग्य ने मुझे उनसे मिला दिया। बहुत दिन से मैं सोच रही थी कि मैं तुमसे यह बात कह दू। तुम्हे तो मैंने उसी दिन एक बार देखा था जब तुम मेरे घर गई थी। किन्तु उसी एक बार देखने के बाद मैंने तुम्हे कभी नही भुलाया। और जब तुम्हारे पापा से मेरी घनिष्ठता बढी तो मेरे मानस मे यह एक तीव्र भावना उत्पन्न हुई कि मैं तुम्हारी ममी बनकर रहू। कैसे आश्चर्य की बात है कि तुमने मुझे ममी मान लिया! अब मुझे एक बात बताओ—वही बात पूछने को मैं तुम्हारे पास आई हू।"

"आप पूछिए।"

"यदि मैं उस घर को छोडकर तुम्हारे घर आ रहू, तो तुम मेरे विषय मे क्या ख्याल करोगी ?"

"आप मेरे घर मे कैसे आ रहेगी ?"

"जैसे तुम्हारी ममी वर्मा साहब के घर पर जा रही।"

"लेकिन उन्होने तो पापा को तलाक दे दिया और उनसे शादी कर ली।"

"मैं भी दत्त को तलाक दे दूगी और तुम्हारे पापा से शादी कर लूगी।"

"हे भगवान् ! ऐसा भी कही हो सकता है।"

"यदि हो जाए, मैं तुम्हारे घर मे तम्हारी ममी बनकर आ जाऊ, तो तुम क्या करोगी ?"

"मै आपको प्यार करूगी ममी, में आपको प्यार करूगी !" मेरी आखो ने आसुओ की धार बह चली और म उनकी गोद मे गिर गई।

# सुनीलदत्त

क्या रेखा वफादार औरत नहीं है [illegible] लेकिन मैं यह कैसी वाहियात बात सोच रहा हूं ! मुझे जल्दी में कोई निर्णय नहीं देना चाहिए। [illegible] बातों पर अच्छी तरह सोच-समझ लेना चाहिए। आखिर यह [illegible] मन में क्यों घर करता जा रहा है [illegible] जमीन-आसमान का अन्तर हो गया है। पर इसके दूसरे [illegible] भी तो हो सकते हैं। आखिर वह अब एक बच्चे की भी मां है [illegible] ब्याह हुए अब नौ साल बीत रहे हैं। अब मैं [illegible] की भांति व्यवहार की आशा कैसे कर सकता [illegible] फिर [illegible] अब पति-पुत्र में भी तो बंट गया है। क्या मुझे [illegible] से ही ईर्ष्या करू ?

लेकिन वह मेरे लिए एक ठण्डी औरत है। [illegible] का जागरण नहीं होता [illegible] उलटे वह सिकुड़ जाती है [illegible] उसका आलिंगन भी अब सजीव नहीं रहा [illegible] 'हां' है। जैसे वह एक पत्थर की निर्जीव मूर्ति है [illegible] लहू नहीं है पानी है [illegible] वह कभी [illegible] में गर्मी नहीं आती। [illegible] यह एक रोग है। [illegible] स्त्रियों को यह [illegible] है। मैं इस सम्बन्ध में बहुत अच्छी [illegible] पुरुष [illegible]

निस्सन्देह नर-नारी [illegible]

वैवाहिक जीवन की सबसे बडी सफलता 'बराबर की जोडी' है। मैं जानता हू कि सम्भोग की बात अश्लील और घृणास्पद समझी जाती है। और विवाह के समय सौ मे एक भी जोडा सभोग-सबन्धी समानता की बातो पर विचार नही करता। और इसका यह परिणाम निकलता है कि विवाह एक धोखे की टट्टी प्रमाणित होता है। विवाह के बाद या तो जल्द ही पति-पत्नी मे विच्छेद हो जाता है, या कलह के बीज जमते हैं, या दोनो मे से कोई एक या दोनो ही पर-स्त्रीगामी और पर-पुरुषगामी हो जाते है। समय और सुविधा उनसे यह सब काम कराती है। कही पुरुष का अतिरेक होता है और वह बलात्कार की सीमा तक पहुच जाता है। तब वे अपार कष्ट पाती हैं, और असाध्य रोगो की शिकार हो जाती है। कुछ सामाजिक स्थिति ही ऐसी है कि स्त्री को पति की इच्छाओ मे विवश होकर दासी बनने को छोड दूसरा मार्ग ही नही रह जाता। वह यदि झगडा करती है तो पति अन्य पतिता स्त्रियो से अवैध सम्बन्ध स्थापित कर लेता है, जो एक नये क्लेश का कारण बन जाता है। मै ऐसे बहुत-से पुरुषो को जानता हू। उनमे अनेक प्रतिष्ठित और सुशिक्षित पुरुष भी हैं।

निस्सदेह पुरुष बलात् स्त्री से उसकी इच्छा और आवश्यकताओ की परवाह किए बिना सम्भोग नही कर सकता। यदि करे तो वह स्त्री के लिए एक क्लेश का कारण बन जाएगा। उससे स्त्री को किसी भी प्रकार का सुख प्राप्त न होगा, और वह विकट स्नायुरोगो का शिकार बन जाएगी। इसके अतिरिक्त ऐसी हालत मे—उनमे चाहे जितना प्रेम हो—उसमे विरक्ति के बीज उग आएगे। और उनमे वह गहरी एकता, जिसकी दोनो के लिए बडी आवश्यकता है, नही उत्पन्न हो सकती। मैने इन सब बातो पर विचार किया है, इनकी लाभ-हानि पर दृष्टि दी है। इसी से मै अपने को काबू मे रखता हू—रेखा की रुचि और इच्छा के विपरीत बलात्कार नही करता हू। परन्तु मै एक स्वस्थ पुरुष हू। पत्नी मे एकनिष्ठ हू। मेरे मन मे जब स्त्री की भूख जागरित होती है, तब मेरी आवश्यकता की पूर्ति होनी चाहिए। वह पूर्ति रेखा नही करती। इसी से मेरे मन मे यह शका

पड़ी देखता हूं तो मुझे क्रोध आ जाता है। पर चिढ़ने और क्रोध करने से क्या होगा? बारीकी से उसका सही कारण ढूंढ़ना होगा। मैंने उसे औषध दी, उसने उसे नहीं खाया। एक अवज्ञा की नजर मुझ पर डाली।

वह कहती है कि वह ठीक है, रोगिणी नहीं है। मैं भी अब यही समझता हूं। तब उसकी इस घोर विरक्ति का कारण क्या है? यदि वह रोगी नहीं है तो वह बेवफा है? किसी दूसरे पुरुष को प्रेम करती है? यह तो बड़ी भयानक बात है। इसके तो विचार-मात्र से रक्त खौलने लगता है। भला कहीं रेखा-जैसी स्त्री बेवफा हो सकती है? क्या मैंने उसका प्रेम देखा नहीं? निष्ठा देखी नहीं? ओफ, वे सब बातें याद आती हैं तो मन कैसा हो जाता है! बुरा हो इस शराब का, इसी ने उसे मुझसे दूर कर दिया।

परन्तु क्या सचमुच मैंने रेखा को खो दिया? क्या अब वह पहली-जैसी रेखा नहीं रही? यह तो विश्वास करने को मन नहीं करता। नहीं, नहीं, कुछ भी बात नहीं है। व्यर्थ ही परेशान हो रहा हूं। उसके मन में गुस्सा है, वह दूर हो जाएगा। बड़ा अन्याय है कि मैं उसपर बेवफाई का सन्देह करता हूं। यह मेरे मन का ही दोष है। मुझे आशा है, सब ठीक हो जाएगा। मुझे उससे मृदु व्यवहार करना चाहिए। मुझे दयालु होना चाहिए। मैं उसे फिर से प्रसन्न कर लूंगा और सब ठीक हो जाएगा। यदि वह रोगिणी है तो अच्छी हो जाएगी। यदि वह क्रुद्ध है तो प्रसन्न हो जाएगी। उसे खोकर मैं जिन्दा नहीं रह सकता। मैं उसे फिर से प्राप्त करूंगा। रेखा-जैसी स्त्री को पाकर कोई भी पुरुष निहाल हो सकता है। और रेखा मेरी है, यह मैं क्यों बार-बार भूल रहा हूं? वह मेरी है, मेरी रहेगी—प्रत्येक मूल्य पर!

# दिलीपकुमार राय

स्त्री जितनी ही शीलवती होती है उतनी ही वह संवेदनशील होती है। जितनी वह संवेदनशील होती है, उतनी ही भावुक होती है। जितनी वह भावुक होती है उतनी ही प्रेमवती होती है। जितनी ही वह प्रेमवती होती है उतनी ही आग्रही स्वभाव की और मानवती भी होती है। सभी भावुक, एकनिष्ठ और प्रेमीवती स्त्रियां मानवती हुआ करती हैं।

प्रेम मन का एक अत्यन्त कोमल और संवेदनशील भाव है। उसका सम्बन्ध चेतनाशक्ति के सबसे अधिक शक्तिसम्पन्न और प्रवाहमय स्पन्द से है। इसलिए अत्यन्त कोमल प्रभाव जो स्त्री से पुरुष पर और पुरुष से स्त्री पर आता है, वही सर्वाधिक शक्तिशाली होता है। इस नाजुक तत्त्व को लाखों-करोड़ों नर-नारी नहीं जानते। कोमल भावुक, प्रेमवती स्त्री तनिक सी भी तो परुषता—कठोरता—को नहीं सहन कर सकती। कामावेग बेशक कठोर आघात चाहता है। कामावेग में स्त्री चरम सीमा का कठोर आघात भी सह सकती है। कहना चाहिए, उसकी कामना करती है—तन तन का ही, मन का नहीं। कामावेग से प्रथम प्रेमावेग का ज्वार आता है। कहना चाहिए, कामदेव प्रेमावेग पर ही सवार होकर आते हैं। स्त्री इस वेग में अतिशय भावुक, अतिशय कोमल, अतिशय नाजुक हो जाती है। उसकी सम्पूर्ण चेतनाएं संवेदनशील बन जाती हैं। इसलिए वह प्रेमावेग में बाल-बराबर की भी कठोरता-परुषता सहन नहीं कर सकती। उस समय का पुरुष-मन का तनिक-सा भी परुषभाव उसे खिन्न कर देता है।

रति प्रेम और काम दोनों ही का सार है। रति में स्त्री का चित्त

भला कैसे सहा जा सकता है! रतिकाल में विरत स्त्री तो है ही नहीं, स्त्री की लाश है। कौन पशु लाश के साथ रति कर सकता है! इसलिए रति का प्राण भावातिरेक है। भावातिरेक से ही रति सक्रिय-सप्राण बनती है। सप्राण रति ही स्त्री को सम्पूर्ण प्राप्तव्य देती है और पुरुष के पौरुष को कृतकृत्य करती है।

मैं नहीं जानता कि आप मेरी बात को ठीक-ठीक समझ भी रहे हैं या नहीं। आप पति हैं या पत्नी—मैं यह नहीं जानता, पर मैं इतना कह सकता हूं कि दाम्पत्य जीवन में आप रति के समुद्र में कितनी ही बार जरूर डूब चुके हैं, पर रति का लाभ भी आपको प्राप्त हुआ है या नहीं, उस डुबकी में आपको प्राण-स्फुरण के आनन्दातिरेक का मोती मिला है या नहीं, यह मैं नहीं कह सकता। विरले ही स्त्री-पुरुषों को वह मोती मिलता है। बहुतों को सीप मिलता है और बहुतों के हाथ घोंघे ही रह जाते हैं।

बहरहाल पुरुष और स्त्री के पारस्परिक सम्बन्ध में सेक्स की उपेक्षा नहीं की जा सकती। भिन्नलिंगी का परस्पर-आकर्षण स्वाभाविक है। बहुधा यह आकर्षण अज्ञात रहता है। और जब यह आकर्षण किसी पर-स्त्री और परपुरुष के बीच अवैध रूप से होता है तो बड़ी कठिन समस्याएं आ उपस्थित होती हैं। जिनमें सबसे बड़ी रसभंग की एवं रतिनाश की समस्या है, जो इतने बड़े खतरे और दुःसाहस को ही समाप्त कर देती है।

मैं आपसे यह बात नहीं छिपाना चाहता कि मेरा शरीर-सम्बन्ध अविवाहिता लड़कियों से भी रहा। परन्तु आपको यह जानकर आश्चर्य हो सकता है कि पहल उधर ही से हुई। आप देखते ही हैं कि मैं कोई सुन्दर पुरुष नहीं हूं। अपने को मैं सुन्दर कहने का भी साहस नहीं कर सकता। परन्तु मैं यह भी दृढ़तापूर्वक कह सकता हूं कि कामोदय-काल में अविवाहिता लड़कियां न सौंदर्य देखती हैं, न आयु, न प्रेम। वे देखती हैं वह प्यास जो नेत्रों में उन्हें देखते ही भड़क उठती है और जिसके मूल में निसर्गिक आकर्षण होता है। मैं कबूल करता हूं कि किसी भी वय प्राप्त सुन्दरी लड़की को देखकर मेरी आत्मा में वह प्यास भड़क उठती है। और

जैसे अजगर की आखो के आकर्षण से उसका शिकार अपने-आप ही आकर उसके मुह मे समा जाता है, ये लडकिया मुझमे समा जाती रही है। बहुतो को मैं दुत्कारता हू, अपमानित करता हू, परन्तु वे रो-धोकर मेरे चरणो मे गिरती है। यह एक नैसर्गिक आत्मार्पण है, जहा वे विवश हो जाती है, खास कर छोटी उम्र की होने के कारण। मैने ऐसी लडकियो की मनोवृत्तिया देखी है। उनका मन न घर के काम-काज मे लगता है, न पढने-लिखने मे। वे घर के लोगो के अनुशासन को भी नही मानती। देखने मे वे सर्वथा उदासीन और अरसिक-सी लगती है। उनमे चपलता या विनोद की मात्रा भी नही होती। वे भिन्नलिगी की प्राप्ति के लिए भीतर ही बेचैन रहती है। और इसके लिए उन्हे दोषी नही कहा जा सकता, क्योकि उनके रक्त के अन्दर कुछ विशेष हारमोन विशिष्ट ग्रन्थियो से [illegible] स्वरूप मिलते रहते है। मैं ऐसी लडकियो को पहचान लेता हू। और [illegible] ही प्यासी नज़र उन्हे मेरी गोद मे ला डालती है। बहुत कम मुझे उनसे प्रेमाभिनय करना पडता है। बहुधा इसकी तनिक भी आवश्यकता नही पडती।

परन्तु रेखा का मामला इन सब लडकियो से भिन्न है। वह एक विवाहिता पत्नी है। उसका पति उसकी बराबर की जोडी का है। वह सुन्दर और स्वस्थ है। वह उससे पूर्णतया प्रेम करता है तथा उसकी सेक्स-सम्बन्धी आवश्यकताओ की भी पूर्ति करने मे समर्थ है। भिन्नलैगिक कोई भी कारण ऐसे नही है जो रेखा को किसी पुरुष की ओर आकर्षित करे। इसी से मेरी नज़रो का वार उसपर खाली जाता रहा—एक साल तक। उसने मेरी ओर सेक्स-भावना से एक बार भी आख उठाकर नही देखा। अपने पति की भाति ही वह अपने पति को प्यार करती थी। अपना-तन-मन उसने अपने पति को सम्पूर्णरूपेण सौप कर दिया था। स्त्री की हैसियत से भी और पत्नी की हैसियत से भी। जहा तक सेक्स का सम्बन्ध था, वह अपने पति से सन्तुष्ट थी। उसका [illegible] — रतिभाव पर। स्त्री शरीर-सहवास के साथ जिस रति [illegible]

कता का अनुभव करती है वह दत्त से उसे प्राप्त नहीं हुई। दत्त इस सम्बन्ध में अनाड़ी और असावधान व्यक्ति है। वह प्रेम को केवल मन का और सहवास को शरीर का विषय मानता है। जैसे वह प्रेम में परिपूर्ण है, वैसे ही सेक्स-पूर्ति में भी त्रुटिरहित है। पर वह प्रेम और काम के संतुलन को ठीक न बनाए रख सका जिससे रेखा का रतिभाव भंग हो गया। उसमें विरक्ति का अंकुर जग आया। मैंने उसे देखा और ठीक समय पर उसे रतिदान दिया और उसे जीत लिया। अब वह मेरी है।

विवाह एक आत्मिक सम्बन्ध है और शारीरिक भी। वैवाहिक जीवन की सार्थकता तभी है जब शारीरिक सम्बन्ध आत्मिक सम्बन्ध में परिणत हो जाए। स्त्री पुरुष का एवं पति-पत्नी का साहचर्य तभी पूरा हो सकता है। परन्तु दत्त-जैसे पढ़े-लिखे मूर्ख इस मर्म की बात को नहीं जानते। विवाह के पाँच वर्ष बीत जाने पर भी रेखा और दत्त का शरीर-सम्बन्ध आत्मिक सम्बन्ध का रूप धारण न कर सका। रेखा उसके लिए छटपटाती रही और दत्त ने उधर ध्यान ही नहीं दिया। वास्तव में उसे इस महत्त्व की बात का ज्ञान ही नहीं है। वह अपने को एकनिष्ठ और कर्तव्यपरायण पति तो समझता है पर उसने रेखा को अपना समर्पण तक एक बार नहीं किया। नहीं तो क्या रेखा-जैसी पद्मिनी मेरे हाथ आ सकती थी? यह तो मुझे एक अनन्य लाभ हुआ, केवल दत्त की मूर्खता के कारण। परन्तु अकेला दत्त ही ऐसा मूर्ख नहीं है। हजारों, लाखों, करोड़ों पति ऐसे ही मूर्ख होते हैं और अपनी मूल्यवान् मणि खो गँवा बैठते हैं।

पुरुषों ही की भाँति कुछ स्त्रियाँ भी मूढ़ होती हैं। वे अपने प्राप्तव्य को नहीं जानतीं, और समझती हैं कि अपना शरीर पुरुष को दे देना एक तरह का अर्पण है। इससे उन्हें ज़रा-सा स्पर्श-सुख भी प्राप्त हो जाता है। पर वहीं थोड़े ही स्त्री का प्राप्तव्य है! जैसे दूसरे गृहकृत्य पति की सुख-सुविधा के लिए वे करती रहती हैं, यह भी एक काम उसके सुख के लिए कर डालती हैं, इसमें भी वे उतनी ही [illegible] प्राप्त होती हैं जितनी घर के दूसरे कामों में। इसी से उन्हें इस काम में अभिरुचि और

आसक्ति नहीं रहती, और रतिभाव का उदय ही नहीं होता। ऐसी स्त्रियाँ शीघ्र ही सहवास को घृणित और गन्दा काम समझने लगती हैं, और पति से विरत हो धार्मिक भावना-प्रधान हो जाती हैं।

परन्तु यदि स्त्री संवेदनशील है, और उसे अपने प्राप्तव्य का पूरा ज्ञान है, तब बात ही दूसरी हो जाती है। ज्यों-ज्यों उसमें अपने प्राप्तव्य के लिए अभिलाषा और लालसा जागरित होती जाती है, वह अपने पति से असन्तुष्ट और विरत होती जाती है। इस स्त्री में और उस स्त्री में जमीन-आसमान का अन्तर रहता है। पूर्वोक्त स्त्री पति से नहीं, सहवास से घृणा करती है। पर यह स्त्री सहवास में नहीं, पति से घृणा करती है। और किसी भी चतुर पुरुष को ऐसी स्त्री को अपनी तरफ [illegible] जाने का अवसर इस तरह मिल जाता है। ऐसा ही मामला [illegible] ही है।

सावधान रहना चाहिए कि पत्नी कोई वेश्या नहीं है [illegible] केवल अपने सुख की प्राप्ति करे। उसका अनिवार्य कर्तव्य [illegible] है कि वह स्त्री को भी उसका प्राप्तव्य संपूर्ण सुख दे और [illegible]। यदि [illegible] ऐसा नहीं करता है तो उसका प्रेम चाहे जितना महान् हो [illegible] कौड़ी के बराबर भी मूल्य नहीं आंका जा सकता। यौन मिलन [illegible] शारीरिक मिलन ही नहीं है, बिना गहन मानसिक मिलन के [illegible] संपूर्ण नहीं हो सकता। और यह शारीरिक मिलन-काल [illegible] मिलन ही वैवाहिक जीवन की सफलता का सबसे बड़ा [illegible] है।

जीवन एक दार्शनिक सत्य है, और जीवन के [illegible] दार्शनिक दृष्टिकोण होना चाहिए। वह दृष्टिकोण ऐसा हो जो [illegible] आवश्यकताओं के व्यावहारिक रूपों को [illegible] समाज दोनों का विकास हो।

पार्थिव है, जिसका प्रभाव जीवन के सामाजिक, आर्थिक और व्यक्तिगत विकास पर पडता है।

शरीर-धारण के लिए हमे बहुत कष्ट झेलना पडता है। परन्तु शरीर ही से हम चरम आनन्द की प्राप्ति भी प्राप्त कर सकते हैं। और क्यो न करे भला? जब हम सारे दिन कठोर परिश्रम करके मानसिक क्षोभ से क्लांत और दुश्चिन्ताओ से लदे-से घर लौटे तो क्यो न नर्म-नर्म आलिंगन का सुख प्राप्त करे? शरीर-सुख की यह लालसा कोई बुरी बात नही है। और मैं, मैंने तो सुख लेना नही, देना ही अपना ध्येय बना लिया है। यही मेरे प्रेम-समार की सफलता की कुजी है। इसी ने मुझे रेखा पर विजय दिलाई है। एक दत्ता है उसका पति जो उससे अनिर्वचनीय सुख लेता रहा, पर उसे जो कुछ देना चाहिए इस सम्बन्ध मे लापरवाह रहा। और जब उसने मुझे पाया जिसका ध्येय सुख लेना नही देना ही था, तो वह इस नई अनुभूति को पाकर आपे मे न रह सकी। उसका सारा शील, सकोच, लज्जा आँधी मे तिनके की भाति उड गई, और वह समूची ही तन-मन से मुझमे समा गई।

# दिलीपकुमार राय

मैं समझता हूं कि मैं तलवार की धार पर चल रहा हूं। किसी भी [illegible] मुझे उन खतरों का सामना करना पड़ सकता है जो जीवन-मरण [illegible] समस्या के कठिन क्षणों में आ उपस्थित होते हैं। [illegible] चाले हैं, जिनमें ठोकर खाकर गिर पड़ने की संभावना [illegible] आज दत्त ने खतरे की घंटी बजा दी है। वह कई दिन से [illegible] था— यह मैं प्रत्यक्ष देख रहा था। 'चोर की दाढ़ी में तिनका' [illegible] चोर तो हूं ही। मैं उसकी विवाहिता पत्नी का जार हूं। यद्यपि [illegible] स्वीकार करने से इन्कार करता हूं कि मैंने उसे पथ-भ्रष्ट किया। [illegible] ही स्वीकार कर चुका हूं कि पहली ही दृष्टि में मैं उसपर मर मिटा था। [illegible] मन में यह भावना उदय हुई थी कि वह मेरी है मेरे लिए है। [illegible] पर कभी भी यह भाव प्रकट न होने दिया, दत्त की [illegible] और रेखा के शील से भयभीत होकर भी। परन्तु फिर ऐसी [illegible] आई, जब वह अपने पति के व्यवहार से असन्तुष्ट हुई, [illegible] हुई। मैंने उससे सहानुभूति का भाव अपनाया। [illegible] से उसकी खीज को क्रोध में और दुःख को वेदना [illegible] दिया। प्रकट में मैं जहां उसकी प्रत्येक भावना से सहानु[illegible] वहां दत्त का भी परम हितैषी शुभचिन्तक बना था। [illegible] मन में दत्त के विरोधी भावों का बीज वपन किया।

विरक्ति के भाव उत्पन्न हो गए। परन्तु यह यथेष्ट न था। उसके मन को मैं दत्त के प्रति घोर घृणा से भर देना चाहता था। उसके हृदय में अगाध प्रेम था दत्त के लिए—अथवा किसी के भी लिए, जो उसका पति होता। वह एक शीलवती मर्यादिता नारी थी। उच्च कोटि की निष्ठा उसमें थी। केवल रोष, खीझ और असन्तोष ही से उसके मन में परपुरुष का प्रवेश हो जाए—ऐसी कमजोर और चंचल मनकी स्त्री वह न थी। मुझे उसके प्यार की आवश्यकता थी—केवल उसके तन को ही मैंने नहीं चाहा, मन को भी अपनाना मैंने चाहा और यह तब तक सम्भव नहीं था जब तक कि मैं पूर्णतया उसके मन को दत्त के प्रति घृणा और विरक्ति से न भर दूं।

इसमें मुझे समय लगा। क्योंकि दत्त में केवल एक ही त्रुटि थी कि वह [illegible] था। जिसपर वह शराब का व्यसन करता था। पर यह सब तो मैं भी करता हूं, परन्तु मैं सावधान पुरुष हूं। दत्त भी यदि सावधान होता तो मुझे सफलता न मिलती।

परन्तु [illegible] दत्त को जिज्ञासा उत्पन्न हुई है जो स्वाभाविक ही है। [illegible] वह अपना प्राप्य नहीं पा रहा है, जिसका [illegible] है। वह मुझपर सन्देह नहीं करता है, इसी से उस दिन [illegible] मुझसे [illegible] था। परन्तु शायद वह मुझसे भी [illegible] का साहस नहीं कर सका। इसीलिए उसने [illegible] प्रश्न उठाया। [illegible] रहा

का अर्थ है—स्त्री-पुरुष का जन्म-जन्मान्तरों के लिए एक-दूसरे से अटूट सम्बन्ध।"

जन्म-जन्मान्तरों की बात सुनकर दत्त को हँसी आ गई। पर वह उसकी वह चिर-प्रसिद्ध हँसी न थी जिसमें ठहाकों के साथ आनन्द बिखरता था। यह तो एक रूखी-सूखी हँसी थी। उसने हँसकर कहा, "जन्म-जन्मान्तर की बात पीछे छोड़ो राय, इसी जन्म में निभाव हो जाए तो गनीमत है।"

मेरे कुछ कहने के प्रथम ही उसने कुछ गम्भीर होकर कहा, "माया ही की बात ले लो। वह न कोई नई-नवेली स्त्री है, न बेसमझ है। बड़ी सभ्य-शिष्ट औरत है वह, पर उसे हो क्या गया, जो वह इस तरह चली गई?"

"इसका मैं इसके अतिरिक्त और क्या कारण बता सकता हूँ कि वह आधुनिका है—पुरानी हिन्दू-परम्परा को नहीं मानती।"

"पुरानी हिन्दू-परम्परा क्या?"

"मैंने कहा न कि हिन्दू-धर्मानुशासन की दृष्टि से स्त्री एक बार विवाहित होकर जीवन-भर पति से विच्छेद नहीं कर सकती। यही नहीं, वह पति के मरने पर भी उसकी विधवा रहेगी और यह विश्वास रखेगी कि जब उसकी मृत्यु होगी तो स्वर्ग या पतिलोक में उसे वही पति मिलेगा, जो जन्म-जन्मान्तरों से उसका पति होता आया है।"

इस बार दत्त को हँसी नहीं आई। उसने तनिक गम्भीर होकर कहा, "तुम भी क्या इस झूठी बात पर विश्वास करते हो राय?"

मैंने हँसकर कहा, "मैं तो स्त्री हूँ नहीं, इसलिए मेरे विश्वास-अविश्वास करने से क्या होता है भला! पर यह बात मैं ज़रूर कहूँगा कि स्त्री को यदि ऐसा ही विश्वास रहे तो मैं उसे पसन्द करूँगा।"

"क्यों पसन्द करोगे तुम इस झूठी बात को?"

"यह कि विवाह के बाद हिन्दू पति का स्त्री पर एकान्त स्वामित्व हो जाता है। और पति मृत हो या जीवित, स्त्री वाग्दत्ता हो या विवाहिता, हर हालत में उसे मन-वचन-कर्म से उसी पति के प्रति सर्वथा अनुबन्धित, अनुप्राणित और आत्मार्पित रहना पड़ेगा।"

'और पति? क्या पति पत्नी के प्रति अनुबन्धित नहीं होगा?"

"जी नहीं, हिन्दूधर्म पति को स्त्री के प्रति अनुबन्धित नहीं करता। हिन्दू-धर्मानुबन्धन में पति एक या अनेक इसी प्रकार से पूर्णानुबन्धित पत्नियाँ रखते हुए भी सर्वथा स्वतन्त्र रूप से [illegible] और अनगिनत पत्नियाँ बिना पत्नी की स्वीकृति के रख सकता है। यहाँ तक कि वह वेश्या और अभिसारिणी स्त्रियों से भी मुक्त सहवास कर सकता है।"

'[illegible] है! आजकल की स्त्रियाँ भला यह स्वीकार कर सकती हैं? और अब तो कानून भी ऐसे बन गए हैं कि स्त्रियों पर कोई [illegible] लादा जा सकता। और वे जब चाहें तभी विच्छेद कर सकती हैं।"

'हाँ बस, इसी कानून की ही करामात से माया ने तलाक दे दिया और [illegible]।"

[illegible] के दाम्पत्य [illegible] करें?"

'[illegible] हमारी लड़की का भी [illegible]—कैसा चमत्कार [illegible], [illegible] विवाह अपनी आज्ञा [illegible]!"

[illegible] तुम कह सकते हो—इस मामले में तुम [illegible] हो?"

दोष-निदान [illegible] अलग-अलग व्याख्या है। दोष या अपराध जैसा हल्का-भारी होता है—दण्ड भी वैसा ही होता है। उसी [illegible] के [illegible] नहीं दी जाती।"

[illegible]

उन्हे समझाता-बुझाता।"

"यह सब काम तो मैंने भी किया।"

"तो क्या कुछ ऐसे गम्भीर कारण आ उपस्थित हुए कि तुम्हे सफलता नही मिली?"

अब मैं क्या जवाब देता। मैंने कहा, "मिस्टर दत्त, बहुत-सी बाते है जो कही नही जा सकती। बूद-बूद तालाब भरता है, ज़रा-ज़रा-सी प्रतिकूल बाते बहुत वज़नी बन जाती है। आरम्भ मे कोमल कल्पनाओ और भावुक प्रवृत्तियो को पूजी बनाकर स्त्री-पुरुष मे प्रेम-व्यापार चलता है। पर बहुधा उन कल्पनाओ और प्रवृत्तियो के तार ढीले हो [illegible] टूट जाते है तो वह प्रेम का लेन-देन ही केवल बन्द नही हो जाता, विरक्ति और घृणा की बौछारो को भी सहन करना पडता है, और उन [illegible] युद्ध मे जो साहसी होता है, वह भाग खडा होता है, जो [illegible] वह मर मिटता है। और सच तो यह है कि प्रेम का जीवन बडा कठिन है। सम्भव है, पत्थर-युग मे जब सभ्यता का आरम्भ था, प्रेम [illegible] हो, पर अब सभ्यता के विकास ने उसे जटिल बना दिया है। और अब मनुष्य आसानी से उसके भार को सहन नही कर सकता।"

"क्या तुम समझते हो राय, कि स्त्रियो की इतनी स्वाधीनता समाज के लिए हितकर है? मैं पुराने युग की रूढि का समर्थन नही करता, [illegible] साधारण कारण से पति-पत्नी का विच्छेद क्या उचित है? फिर यह भी तो सम्भव है कि जो कुछ समझा गया है वह गलत भी हो सकता है।"

"बहुधा होता भी तो ऐसा ही है। परन्तु आज की स्त्रियो को हम दबा-कर नही रख सकते।"

"परन्तु इस तरह तो जीवन ही अस्त-व्यस्त हो जाएगा, [illegible] एकनिष्ठता खत्म हो जाएगी।"

"हो जाए, पर व्यक्ति-स्वातन्त्र्य सबसे बडी वस्तु है। [illegible] युग की सबसे बडी माग है।"

"क्या तुम यह समझते हो राय, कि [illegible]

है? तुम तो बाईस वर्ष के तजुर्बेकार आदमी हो?" उसने फिर उसी प्रकार फीकी हँसी हँसकर कहा।

मैंने कहा, "इसका तो कोई एक नियम नहीं प्रतीत होता, परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि स्त्री-पुरुष की एकता के बीच शरीर की अपेक्षा मन की महत्ता अधिक है। मानसिक क्षोभ उनकी एकान्त एकता में बाधक है। शिक्षा ने अब स्त्री-पुरुष दोनों ही का मानसिक स्तर ऊपर उठ गया है। इसलिए मनोविकार और मनस्तुष्टि शरीर-तुष्टि से अधिक महत्त्व रखने लगे हैं।"

"शायद पत्थर-युग में ऐसा न था।"

"शायद न था, शायद था—कुछ ठीक नहीं कह सकता, पर एक बात [illegible] कि कुछ बातें हैं जो स्त्री-पुरुष दोनों को एक दूसरे के प्रति [illegible] करती हैं। इसमें मानसिक कोमलता और आत्मार्पण की भावना [illegible] है।"

"फिर भी [illegible] बात नहीं कही जा सकती। बहुत स्त्रियाँ [illegible], दुराचारी पतियों से भी प्रसन्न और सन्तुष्ट रहती हैं। [illegible] को पसन्द करती हैं। बहुतों को आदर्श भी प्रिय नहीं होता। [illegible] प्रिय बन जाते हैं। [illegible] पर भी स्त्रियाँ प्रसन्न हो उठती हैं।"

"क्या तुम प्रेम के सम्बन्ध में कुछ अधिक जानते हो राय?"

मुझे उनके इस प्रश्न पर अनायास ही हँसी आ गई। यह एक [illegible] का प्रश्न था। मैंने कहा

"क्या [illegible] प्रेम [illegible] है।"

"खैर, तो सुनिए, पाशविक प्रवृत्ति ही प्रेम है।"

"पाशविक प्रवृत्ति से प्रेम का क्या सम्बन्ध है?"

"बस समझ लीजिए, दोनो एक ही है। खास कर औरत के मामले मे।"

"अरे भाई, तुम तो पहेलिया बुझाने लगे। साफ बात क्या नहीं कहते!"

"आप साफ ही सुनना चाहते है तो सुनिए। स्त्रिया कोरे भावुक प्रेम को पसन्द नहीं करती। वे तो उसी प्रेम को पसन्द करती है जिसमे काम-वासना का भीषण आक्रमण छिपा हो।"

मेरी बात सुनकर दत्त चुप हो गया। वह किसी गम्भीर चिन्ता मे डूब गया। मेरा हृदय धडकने लगा। मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा कि अब कोई वज्रपात मेरे ऊपर होनेवाला है। परन्तु उसने [illegible] कहा, "क्या सचमुच औरते इस कदर कामुक होती है?"

"क्या आपने सुना नही, औरत मे पुरुष से आठ गुनी काम [illegible] होती है?"

"हा, सुना तो है। पर अपने आठ बरस के वैवाहिक जीवन मे [illegible] यह बात प्रत्यक्ष नही देखी। पर तुम शायद ठीक कहते हो क्योंकि तुम्हारा अनुभव बाईस बरस का है। लेकिन राय, यदि [illegible] यही कारण था तो तुमने अपना इलाज कराने मे क्यो लापरवाही की।"

मेरा मुह शर्म से लाल हो गया, और मुझसे इसका जवाब देते न बना। यद्यपि यह एक आकस्मिक और सहज सहानुभूति का ही [illegible] था, पर मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि जैसे दत्त ने मेरे मुह पर [illegible] तमाचा मारा हो। मैं अभी कुछ जवाब सोच ही रहा था कि इतने में [illegible] 'राय, तुम्हारी यह व्याख्या गलत भी हो सकती है।

मेरा मन हो रहा था कि मैं अब यहा से [illegible]। [illegible] कौन-सा रास्ता पकडे और [illegible] सन्देह का पात्र [illegible]। [illegible] इस समय दत्त की नजर से [illegible]

रहा था और उसी भाव-प्रावल्य मे वह प्रश्न कर रहा था। अव मैंने भी गम्भीर स्वर मे कहा, "हो सकता है कि मेरी यह प्रेम-व्याख्या गलत हो, क्योकि अन्तत मैं एक विफल पति हू।" दत्त ने एक गहरी सास ली और कहा, "राय, ऐसा प्रतीत होता है कि सभी पति विफल पति होते है। किसी स्त्री का पति होना एक घाटे का सौदा ही है।"

इतना कहकर वह उठ खडा हुआ। उसने अपनी सहानुभूति से मेरा हाथ पकडकर कहा, "भाई राय, विश्वास करो, तुम्हारे लिए मै वहुत दु खित हू। समझ रहा हू कि तुमने माया के वियोग को सहन करने मे अपरिसीम धैर्य का परिचय दिया है। मै अपनी कह सकता हू कि कही यदि मुझे रेखा को इस तरह खोना पड जाए तो मै जिन्दा न रह सकूगा।" उसने मुझे नमस्कार कहा। मैने कुछ जवाव न देने ही मे कुशल समझी और प्रतिनमस्कार करके चला आया।

# सुनीलदत्त

वडी भयानक वात कही राय ने कि पाशविक प्रवृत्ति ही प्रेम है। परन्तु यह कैसे माना जा सकता है? राय ने उसकी व्याख्या भी की। उसने कहा—स्त्रिया उसी प्रेम को पसन्द करती है जिसमे काम [illegible] का भीषण आक्रमण निहित हो। परन्तु मै इस वात [illegible] चाहता हू। स्त्री-पुरुष का पारस्परिक सम्वन्ध पहले प्रेम का [illegible] है, या काम का सम्वन्ध? निस्सदेह प्रेम का सम्बन्ध होता है। परन्तु [illegible] काम-वासना नही छिपी रहती है, यह नही कहा जा सकता। [illegible] मैने विवाह से पूव देखा तो मन मे कैसी एक गर्मी उत्पन्न हुई [illegible] चढ आया हो! कितनी रातो तक मैने उसकी कल्पना-मूर्ति का [illegible] किया! उस ध्यान मे कितना प्रेम था और कितना काम यह मै नही कह सकता, अथवा मुझे कहना चाहिए, काम ही अधिक था।

प्रेम तो देता है। जो जितना अधिक देता है वह उतना ही अधिक प्रेमी है। परन्तु काम तो एक वासना है, वह लेने की इच्छा [illegible] आता है। कबूल करता हू कि जब-जब मैने रेखा का ध्यान किया तो मन मे यही हुआ कि उसे मै प्राप्त कर लू आत्मसात् कर लू [illegible] लू। यह देना कहा हुआ! लेना ही तो हुआ। इसलिए वह काम [illegible] प्रेम नही। राय ने ठीक कहा—प्रेम एक पाशविक प्रवृत्ति है। [illegible] की स्मृति से मेरे मन मे पाशविक उत्तेजना नही पैदा हु[illegible] प्रवृत्तियो ने मुझे नही झकझोर डाला

इसके बाद जब मैं रेखा को ध्यान करता [illegible]

मेरा हो गया—तब क्या प्रेम प्रबल था ? न, न, प्रेम नहीं काम प्रबल था। प्रेम तो उसका वाहन था। कामदेव साक्षात् प्रेम पर सवारी गाठकर आता था। और कामदेव जब तक अपना अर्घ्य-पाद्य रेखा के स्मीत्व में न प्राप्त कर ले तब तक उसे विवश किए रहता था। और बड़ा अद्भुत था यह प्रेम और काम का सयुक्त मोर्चा।

पर तब मैंने इसका महत्त्व समझा ही न था। कहना चाहिए, समझने का मुझे होश था न अवकाश। मैं तो सचमुच एक आक्रान्ता था। सच है, सच है, भिन्नलिंगी का यह स्वभाव है। वह भिन्नलिंगी का विरोधी अस्तित्व है। और उसका सम्मिलन दो पर्वतों से टकरा जाने के समान दुर्धर्ष है। उस समय मैंने यह भीषण सत्य नहीं समझा था। आज समझ रहा हूं।

परन्तु वह पाशविक प्रवृत्ति अब सो क्यों गई ? क्या प्रेम का रस सूख गया ? अपनी बात तो मैं कह सकता हूं। मेरे हृदय में प्रेम का समुद्र उमड़ रहा है—केवल रेखा के लिए। परन्तु उस प्रेम में वह पाशविक प्रवृत्ति क्यों नहीं रही है ? रेखा को देखकर, छूकर अब शरीर में फुरफुरी क्यों नहीं आती है ? खून गर्म क्यों नहीं होता है ? आक्रमण करने का आवेश क्यों नहीं उत्पन्न हो जाता है ? और यदि कभी-कभार होता भी है, तो रेखा प्रत्याक्रमण क्यों नहीं करती ? वह तो मिट्टी हो गई है। भला इक-तरफा लड़ाई भी कहीं होती है ! बिल्ली जीवित चूहे पर ही तो झपट्टा मारती है। शेर छलांगें मारते हिरन ही पर तो उछाल भरता है। शिकार की छटपटाहट ही तो शिकार की जान है। कहीं मुर्दे का भी शिकार किया जाता है ?

रेखा का शरीर जी रहा है। पर उसका नारी-भाव मर चुका है, या सो रहा है, या क्या हो गया है, यह मैं नहीं जान पाता। पहले ही कह चुका हूं कि वह बीमार नहीं है। कितनी बार मन में शंका उठती है कि कहीं वह बेवफा तो नहीं है ? भला रेखा-जैसी स्त्री भी कहीं बेवफा हो सकती है ? नहीं-नहीं, नहीं हो सकती। फिर उसे ऐसे अवसर कहां मिले

है ! बस, राय से उसकी घनिष्ठता है। पर राय पर उसकी भला क्या आसक्ति हो सकती है ! अथवा दुनिया मे सब-कुछ हो सकता है ! हे भगवान् ! यह मैं क्या सोचने लगा ! छि-छि ! मगर सब बातो पर विचार करने मे क्या हर्ज है ! राय तो बहुत दिन से हमारे घर आता है—रेखा के ब्याह के प्रथम से ही। जब मेरा ब्याह नही हुआ था, मैं उनके घर जाता था। माया मुझसे खुलकर मिलती, हसती, बोलती थी। न मेरे मन मे कुछ विकार उत्पन्न हुआ, न उसके। हम दोनो शुद्ध मित्र-भाव से [illegible]। उसी प्रकार अब राय मेरे यहा रेखा से मिलता है, हँसता-बोलता है। [illegible] के युग मे भला औरत को कही बाधकर रखा जा सकता है ? [illegible] जैसी पत्नी पर मैं अविश्वास करू, या राय-जैसे मित्र पर [illegible]। क्या यह उचित होगा ?

फिर भी एक बात म देखता हू। अब रेखा राय से भी [illegible] भाति नही मिलती, हँसती, बोलती। उसके आने पर या तो [illegible] बुनाई या पुस्तक लेकर बैठ जाती है, या टल जाती है। [illegible] उससे बात नही करता। क्या उसकी राय से [illegible] ऐसी कोई बात मुझे तो मालूम नही। वह रेखा [illegible]। [illegible] पूछता हू। मन ही मन घुटने से क्या लाभ ?

"बैठो रेखा, बैठो, कितनी सुन्दर सन्ध्या है ! [illegible] जाए तो चलकर कोई अच्छी-सी पिक्चर देखी जाए। [illegible] आजकल कोई अच्छी पिक्चर कहीं [illegible] है ?"

मैं क्या करूगा, जानती हो ?"

"क्या करोगे ?

"जान दे दूगा। गोली मार लूगा।"

"राय ने तो गोली नही मारी, जान नही दी।"

"बडा सख्तजान है राय। पर मैं तुम्हारे बिना न रह सकूगा रेखा !"

"राय भी, सभव है, माया से ऐसा ही कहते रहे हो !"

"लेकिन मैं तो तुम्हे बहुत प्यार करता हू रेखा।"

"राय शायद माया को प्यार नही करते थे !"

"शायद नही करते थे।"

"तो बाईस बरस तक क्या करते रहे ? दोनो का ससार कैसे चलता रहा ? बिना प्यार के भी कही औरत मर्द रह सकते है ?"

"नहीं रह सकते रेखा, इन दिनो मैं इस बात को खास तौर पर देख रहा हू।"

"इन दिनो क्यो ?"

"पता नहीं, तुम्हे क्या हो गया है। गुमसुम रहती हो। पहले की तरह हँसते हुए तुम्हारे होठ फडकते नही। तुम्हारे गालो मे गढे पडते नही। आखो मे चमक आती नही। जब पास आती हो तो पास आते-आते रह जाती हो। तुम्हे देखकर मेरा दिल उछलता है, पर जैसे कोई उसे दबोच डालता है। क्या तुम इन सब परिवर्तनो को नही देखती हो ?"

"नहीं, मैं तो नहीं देखती।"

"तो तुम कहना चाहती हो, तुम वही हो जो पहले थी, जब ब्याहकर आई थी ?"

"तुम क्या समझते हो, मैं बदल गई हू ?"

"जरूर बदल गई हो, वरना इतनी बातचीत होने पर भी तुम वही खडी रहती ? मेरे गले मे न झूल जाती ? तीन दर्जन चुम्बन तडातड अकित न कर देती ?"

"तुम समझते हो, मैं वही ब्याह की नवेली बनी रहू ?"

"न-न, मैं चाहता हू तुम आज की मेरी प्राणप्रिया पत्नी बनो। मैंने तुम्हे जो व्याह के बाद लेना सिखाया है उसे अधिक न अधिक लो। कितना प्यार, कितना सुख अजलि मे लिये मैं प्रतीक्षा कर रहा हू। कहता हू लो—लो—लो! लेकिन तुम हो कि आख उठाकर देखती तक नही। क्या इतने ही मे तुम्हारी भूख की तृप्ति हो गई? कहा गई तुम्हारी वह आकुल-व्याकुल-आतुर मूर्ति, उन्मुख प्यार की थिरकती हुई गुडिया? हसी के फूल बखेरती हुई, नजर के तीर चलाती हुई, शरीर की सुषमा फैलाती हुई जो तुम आती थी—वह तुम अब कहा हो?"

"मैं तो वही हू। तुम्हारी समझ का फेर है।"

"ओफ, कितना ठण्डा जवाब है! मेरी प्यारी रेखा, मेरे पास आओ, आओ मेरी गोद मे बैठो। मेरे कण्ठ मे सुकोमल भुजवल्लरी डालकर कहो, तुम्हे क्या चाहिए? मैं तुम्हारे लिए क्या करू? तुम दुखी क्यो हो?"

"मुझे कुछ भी दु ख नही है।"

"वैसे ही ठण्डा जवाब। रेखा, मेरा कोई अपराध हो तो कहो, मैं तुमसे क्षमा मागू।"

"तुम व्यर्थ ही बात का बतगड बना रहे हो।"

"तो बताओ क्या बात है?"

"कुछ बात हो तो कहू।"

"अच्छा, मेरी बात छोडो। आजकल तुम [illegible] खोई-खोई रहती हो।"

हँसना चाहिए ।"

न जाने कहा से एक अवसाद का अघेरा सागर उमड आया और मैं उसमे डूब गया। रेखा ने कहा, "पिक्चर देखने जाते थे, जाओ, देख आओ। तबियत बहल जाएगी।"

'नही, अब सोऊगा। सिर मे दर्द है।"

"तो सो रहो।" इतना कहकर रेखा चली गई, और मुझे ऐसा लगा कि कोई नस कट गई है और सारे शरीर का खून निकल गया है।

अपने पढने के कमरे मे दरवाजा भीतर से बन्द करके बैठ जाती है, या किसी सहेली के यहा चली जाती है। सिर्फ शोफर रह जाता है। वह उन्हे 'मेमसाब' कहता है।

वह भी शायद उनके यहा आने का अभिप्राय जान गया है। वही तो अब उन्हे कार मे लाता है। पर उसकी नज़र मे मैं कैसी एक घृणा देखती हू! छोटी जात का आदमी है, पर बुरी-भली बात को समझता है। कभी-कभी मेहतर-जमादार से उनके सम्बन्ध मे बाते करता है। मैंने भी एकाध बार उनकी बाते सुनी हैं। क्या कहू, सुनकर शर्म मे पानी-पानी हो जाती हू। पापा की कितनी बदनामी हो रही है इस काम मे! घर के नौकर-चाकरो तक की चर्चा का विषय वे बन चुके है।

मुझे तो अब यह असह्य-सा होता जा रहा है। उन्होने कहा था कि वे मुझे मेरी ममी की तरह ही प्यार करती है, वे मेरी ममी है। तब तो मुझे भी उनकी बात अच्छी लगी थी। मैं ममी की भाति उन्हे प्यार करने लगी थी। तब मुझे ममी पर गुस्सा था। पर अब तो देखती हू ममी तो ममी ही है। मिसेज दत्त ममी नही है। वे जिस मतलब से आती है उसी पर उनकी नज़र है। बहुत खराब बात है यह। वैसी ही जैसी वह बात थी, जब वर्मा साहब ममी के पास आते थे। ममी आखिर उनके पास चली गई। अब क्या मिसेज़ दत्त भी यहा पापा के पास आ रहेगी? लेकिन मैं उन्हे ममी नही कह सकती। वे ममी है ही नही। कहा है उनकी नज़र मे वह प्यार और ममता जो ममी की नज़र मे था! आज भी मैं उस नज़र का ध्यान करके रोती हू।

पापा ने मुझे इजाज़त दी है कि मैं कभी-कभी जाकर ममी से मिल सकती हू। मैं कभी-कभी चली जाती हू। यो मेरा दिल उनके पास जाने को बहुत मचलता है, पर जाते हुए सकोच बहुत होता है। एक प्रकार की हूक मेरे दिल मे उठती है। मैं अपने ही से लडने लगती हू कि मुझे नही जाना चाहिए। पर जब मन बेताब हो जाता है, चली जाती हू। ममी का प्यार तो वैसा ही है। कितनी खुशी होती है! अपने सामने बिठाकर खिला[illegible]

पिलाती हैं—बात करती हैं। पापा की बहुत-सी बातें पूछती हैं। उनका ध्यान रखने की बार-बार हिदायतें देती हैं। वर्मा साहब भी मुझे देखकर बहुत खुश होते है। बड़ा प्यार दिखाते है। बहुधा कोई उपहार देते है। पढ़ने-लिखने की बाबत पूछते हैं। और जब तक मैं वहां रहती हूं ममी को मेरे पास ही रहने देते है। ममी भी तो मुझे नहीं छोड़ती। कभी कभी तो मुझे ऐसा प्रतीत होता है, यही मेरा घर है। वहां से आने का मन ही नहीं करता। वहां से लौटकर यहां बहुत सूना-सूना लगता है। [illegible] ममी के पास जाने को मन होता है। मन को रोकती हूं। [illegible] रोने लगती हूं और फिर चली जाती हूं।

सचमुच वही तो असली ममी है। हमारे घर [illegible] हुआ। लेकिन ये मिसेज दत्त भला ममी कैसे [illegible] इनमें कहां है। नहीं-नहीं, ये ममी नहीं हैं।

मैंने ममी से मिसेज दत्त के यहां आने-जाने की [illegible] वे आती हैं। सीधी पापा के शयनागार में चली [illegible] तक नहीं करती हैं, यह भी कह दी है। उनकी आ[illegible] है कि उनके आने के समय मैं घर में न रहूं तो ही [illegible] कह दिया है। ममी सुनकर चुप हो जाती हैं। उन[illegible] दर्द भर जाता है, देख नहीं सकती न। और ममी-[illegible] ममी, इन बातों का आखिर नतीजा क्या होगा [illegible] से पूछा—क्या मैं उनसे कह दूं कि वे मेरे घर न [illegible] न करें कि उन्हें न बुलाया करें—तो ममी ने [illegible] तो उन्होंने यह भी कहा कि [illegible] चाहता है पर पापा तो [illegible] धर है नहीं।

मिला उठी। इनके चेहरे पर ऐसा एक कठोर भाव आ गया जैसा मैंने पहले कभी नही देखा था। और जब मैं चलने लगी तो उन्होंने कहा, "बेबी, मेरा एक काम कर दोगी बेटी ?"

मैंने कहा, "कहो मा।"

जब मैं बहुत खुश होती हू तो ममी को मा कहती हू। मैंने कहा, "कहो मा।"

उन्होंने मुझे अपने सीने मे छिपा लिया कि मैं उनके आसू न देख सकू और कहा, "बेटी, मेरा एक फोटो वहा सोने के कमरे मे टगा हुआ है, मुझे ला दे।" और मैंने वह फोटो उन्हे ला दिया।

पापा ने मुझसे पूछा, 'वह फोटो क्या हुआ ?' तो मैंने बता दिया कि ममी ने मागा था, दे आई हू।

पापा कुछ बोले नही, चुपचाप चले गए। शायद नाराज हो गए।

पापा भी तो मुझसे कम बात करते है। वे चाहते है कि जब मिसेज़ दत्त आए तो मै घर मे न रहू। मैं भी हकीकत मे यही चाहती हू। पहले ममी जब यहा थी तो उन्होंने चाहा था कि मैं होस्टल मे जा रहू, और मैंने इन्कार कर दिया था, पर अब तो मैं स्वय चाहती हू। असल बात यह है कि मैं न तो मिसेज़ दत्त का पापा के शयनागार पर इस तरह दखल जमाना देख सकती हू, न रोज़-रोज़ उनका आना बर्दाश्त कर सकती हू।

मै मन ही मन घुटती रहती हू। इससे मेरी स्टडी मे भी हर्ज होता है। ममी से जब-जब मिसेज़ दत्त की बात मैंने कही, तब-तब वे चुप रही, अच्छा-बुरा कुछ कहा नही। पर मै जानती हू कि यदि मैं मिसेज़ दत्त को अपमानित करू तो ममी खुश होगी। बहुत खराब औरत हैं मिसेज़ दत्त।

# सुनीलदत्त

काम-विज्ञान की कुछ पुस्तकें खरीद लाया हूँ। उनका अध्ययन कर रहा हूँ। राय ने जो यह बात कही है कि स्त्रियाँ ऐसी [illegible] हैं जिसमे कामावेग का भीषण पाशविक आक्रमण निहित होता है, [illegible] मैं इस विचित्र विषय का सागोपाग अध्ययन करूँगा। [illegible] जीवन के सुख-दुःख के इतने निकट है तो यह [illegible] जाता? इस पर तो डाक्टरेट करना चाहिए। [illegible] काम-विज्ञान स्त्रियों की और पुरुषों की अलग-अलग जातियाँ [illegible] हैं। ये जातियाँ सामाजिक स्तर पर नहीं होतीं—तन और मन [illegible] के आधार पर होती हैं। पतली-दुबली, लम्बे शरीर की [illegible] जिसकी उँगलियाँ और मध्य शरीर भी लम्बा हो, [illegible] लाल रंग के वस्त्र पसन्द करे, क्रोधी हो, शरीर पर [illegible] शरीर के नीचे का भाग भी लम्बा हो, स्मर-मन्दिर पर [illegible] हो, रतिजल क्षारगन्धि हो, शीघ्र तृप्त होनेवाली हो [illegible] हो, न कम न अत्यधिक खानेवाली हो [illegible] आदत हो, मलिनचित्त हो, स्वर गधे के समान हो—[illegible] मेरी रेखा शंखिनी नहीं है

भला मेरी रेखा ऐसी कहा है !

एक स्त्री चित्रिणी होती है—चाल उसकी मन को लुभाती है, कद मध्यम होता है। जघन-स्थल विशाल और शरीर दुबला-पतला होता है। होंठ भरे हुए, काक जघा, तीन रेखाओ वाला कण्ठ, चकोर के समान कंठ-स्वर, ललित कलाओ मे रुचि, रोम कम, चचल स्वभाव, चपल दृष्टि, बनाव-शृगार मे रुचि। ये चित्रिणी के लक्षण हैं। रेखा चित्रिणी भी नही है। वह पद्मिनी है। पद्मिनी के लक्षण उसमे मिलते है। पद्मिनी स्त्री कमल के समान कोमलांगी, शरीर और रतिजल मे दिव्यगन्ध, चकित हरिणी के समान आँखें, नेत्रो के किनारे लाल, श्रीफल-से गोल उरोज, तिल के फूल के समान नासिका, श्रद्धावती, सलज्जा, कमल-पुष्प के समान सुन्दर कांति-वाली, चम्पकवर्णी, छरहरे शरीरवाली, जिसकी चाल राजहंसिनी की भाँति हो, जिसके उदर मे त्रिवली पडती हो, कलहंस के समान जिसकी वाणी मधुर हो, तन-मन से पवित्र, साफ-शुद्ध रहनेवाली। मानिनी, लज्जा-वती, अल्पभाषिणी, श्वेत रंग के फूलों को पसद करनेवाली स्त्री पद्मिनी होती है। मेरी रेखा साक्षात् पद्मिनी जाति की स्त्री है।

कहा है कामदेव के पाच बाण है—अकार, इकार, उकार, एकार, ओकार। क्रमश इनके लक्ष्य है—हृदय, वक्ष, नयन, मस्तक और गुह्य-स्थान। इन मर्मस्थानो पर नयनरूप धनुष को तानकर दृष्टिरूप बाण-निक्षेप करने से स्त्री वशीभूत हो जाती है। प्रतिकूल स्त्री को अनुकूल करना, अनुकूल स्त्री को प्रेमी-अनुरागिनी बनाना और अनुरागिनी-अनुरक्ता से रति-आनन्द की प्राप्ति करना—यही कामशास्त्र का गूढ विषय है। ऊँचे पर्वत पर से गिरती हुई निर्झर की तरल जलधारा के समान इस प्रवाही ससार मे सार पदार्थ कामानन्द है, और सारे शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धादि वासना-समूह उसी के अधीन है। ब्रह्मानन्द के समान उस महत् आनन्द को कोई मन्दबुद्धि, सूक्ष्म काम-कलाओ की विभिन्नता को न जाननेवाला कोई मूढ किस प्रकार प्राप्त कर सकता है !

मैने स्त्रियो की जाति की चर्चा की है। प्रत्येक जाति की स्त्री का

पृथक् स्वभाव होता है। परन्तु आयु की दृष्टि से बाला, तरुणी, प्रौढ़ा के
भिन्न-भिन्न गुण होते है फिर काम-प्रवृत्ति के भाव से [illegible]
इंगित है। इन सबको न जानने वाला रतिविद्या मे मूढ पुरुष सुन्दरी स्त्री
के यौवन को प्राप्त करके भी प्राप्त नही कर पाता है। सच है, सच है
मैंने रेखा को प्राप्त करके भी नही प्राप्त किया है। मै रतिविद्या मे [illegible]।

हिन्दू-धर्मशास्त्र, दयानन्द, टाल्स्टाय गान्धी सभी [illegible] है
कि स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध सिर्फ सन्तानोत्पत्ति के लिए ही होना [illegible]।
इसलिए पुरुष को ऋतुकालाभिगामी होना चाहिए। [illegible]
वान् पुरुष यही कहते है। पर काम-विज्ञान कहता है कि [illegible]
केवल नीति या धर्म का ही प्रश्न नही है। यह [illegible]
और जीवन के प्राकृतिक विकास का प्रश्न है। [illegible]
विचार किया है और इसी निर्णय पर पहुचा है कि [illegible]
उद्देश्य विभिन्नलैंगीय असाधारण आनन्द की प्राप्ति है [illegible]
स्वास्थ्य और जीवन को ही उन्नति मिलती है [illegible]
भी प्राप्त होती है। सहवास-सम्बन्धी मामलो मे [illegible]
किसी को अधिकार है तो केवल चिकित्सक का [illegible]
से स्त्री-पुरुषो के सहवास पर प्रतिबन्ध लगा सकता है [illegible]
सकता है कि वह जब यह देखे कि उसमे स्त्री का [illegible]
खतरा है। और यह बात तो सर्वथा गलत है कि [illegible]
स्वास्थ्य के लिए हानिकर है।

स्त्री या पुरुष के सहवास से वंचित है! अजी, मैं तो यहा तक कहने का साहस कर सकता हूं कि ऐसे स्त्री-पुरुष समाज के लिए खतरा हैं।

मैंने काम-सम्बन्धी स्मृतियों को, आकांक्षाओं को, विकारों को दबाकर भुला देने की चेष्टा की। परन्तु इससे मेरी आन्तरिक काम-वासना जागरित ही हुई। उस दिन पागलखाने के प्रधान चिकित्सक कह रहे थे कि पागलखाने के पुरुषों के वार्ड में कोई उत्तेजित पुरुष इतना अश्लील नहीं बकता जितना स्त्रियां। इसका अभिप्राय तो स्पष्ट है कि उन्हें अपनी वृत्ति को दमन करने के लिए जितनी शक्ति खर्च करनी पड़ती है उतनी शक्ति उनमें नहीं है।

नीतिशास्त्री और धर्माचार्य मनोनियमन और संयम पर चाहे जितना भी ज़ोर डालें, और उसकी उपयोगिता की जितनी भी चाहें प्रशंसा करें, पर बलात् मनोनिग्रह के दूषित परिणामों से उनको छुटकारा नहीं मिल सकता। इस संयम और यथार्थ मनोनियमन को पालन करने की सामर्थ्य विरले ही मनस्वी पुरुष में हो सकती है, सर्वसाधारण में नहीं। भला सोचिए तो आप, मेरे-जैसा सीधा-सादा गृहस्थ—जो अपनी पत्नी में अनुरक्त है, और जिसने कभी संयम के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं विचारा है, और स्वाभाविक कामोद्रेक में सहवास का सुख प्राप्त कर हँसी-खुशी जीवन व्यतीत करना चाहता है—क्या पवित्रजीवी और शांत नागरिक नहीं है? क्या मेरे-जैसे व्यक्ति को किसी भी अर्थ में दुराचारी कहा जा सकता है?

अज्ञानी जन समझते है कि कामवासना एक देह-स्वभाव है, जीवन की स्वाभाविक प्रवृत्ति है, परन्तु ऐसी बात नहीं है। शरीर में कुछ ग्रंथियां हैं, वे अनेक हैं। उनमें विभिन्न प्रकार के स्राव निकलते, और रक्त में मिलते रहते हैं, जिनसे शरीर में जीवनी-शक्ति का स्रोत प्रवाहित रहता है, तथा जीवनी-शक्ति का संचालन भी होता है। वे सूक्ष्म नालियों के द्वारा रक्त के साथ मिल जाते हैं। इन स्रावों का मनुष्य के स्वास्थ्य पर तो खास प्रभाव पड़ता ही है, स्वभाव पर भी पड़ता है।

इन ग्रंथियों में से दो प्रकार के स्राव निकलते हैं। बाहर निकालने वाले

और उसका मूल उद्गम अन्त स्राव पेशी मे पैदा होना है। इन स्रावो को उत्पन्न करने वाली अनेक पेशिया है। यदि एक ग्रथि का काम सुस्त होता है तो दूसरी पर भी उसका प्रभाव पडता है और उससे देह-स्वभाव बदल जाता है।

लोग इस कुदरती वैज्ञानिक शरीर-निर्माण की बारीकी को नही जानते, और थोथे नीति के उपदेशो द्वारा सब किसी को सयम का उपदेश देकर और उनके स्वभाव और शरीर-निर्माण के प्रतिकूल उन्हे बलात् सयम के लिए विवश करते हैं, जिसका घातक प्रभाव शरीर और मन पर पडता है।

मन शरीर से भिन्न नही है। वह शरीर ही के गुण-धर्म का परिणाम है। आत्मा को भी आध्यात्मिक लोग शरीर से पृथक् सत्ता मानते है। वे यह भी कहते हैं कि वही शरीर और मन पर नियन्त्रण करने की शक्ति रखती है। परन्तु यह कोरा सिद्धान्त ही है, व्यवहार मे उसकी कोई उपयोगिता नही है, न विज्ञान उसके अस्तित्व से लाभ उठा सकता है, न उसके न होने से विज्ञान का काम अटकता है।

किसी शारीरिक काम की सबल इच्छा को मसोस डालना वास्तव मे आत्मा का नही, मन का काम है। वह इच्छा जितनी दुर्दम्य होगी, मन को दमन करने से उतना ही क्षय होगा, क्योकि मन की गति ही इन्द्रियो की इच्छाओ की पूर्ति की ओर है। मन की शक्ति आनुवशिक होती है। पूर्व के विचार-सस्कारो से वह प्रभावित रहती है, और पूर्वानुभव का उसपर प्रभुत्व रहता है। ऐसी दशा मे किसी भी इन्द्रिय की विषयेच्छा यदि प्रबल होती है तो अन्य इच्छाए स्मृति से ओझल हो जाती हैं, और सारी जीवनी-शक्ति उसी इच्छा पर केन्द्रित रहती है। अब शरीर के इस नैसर्गिक उद्वेग को, जो पराकाष्ठा को पहुच चुका है, दबाना निश्चय ही शरीर की जीवनी-शक्ति के विपरीत एक भयानक धक्का देना है, जिससे वह शक्ति छिन्न-भिन्न हो जाती है।

ओफ, कितने गहन और भयानक ये तथ्य हैं, जिन्हे सब लोग नही

# दिलीपकुमार राय

दत्त पागल हो गया है, या उसे कामोन्माद चढा है, या वह मुझ पर सन्देह करता है। अब वह हर समय काम-विकार की ही बातें करता है। कभी-कभी रेखा की बातें करता है। उन बातो मे उसका प्रबल मनोवैकल्य प्रकट होता है। उसका विनोदी स्वभाव, ठहाके मारकर हँसना, नव गायब हो गया है, न अब वह पहले की भाति गप-शप करता है। ऐसा प्रतीत होता है, दोस्ती का वह भाव भी अब उसके मन मे नही है। वह रेखा की कामवासना की, उसके मूल से आधारित वैज्ञानिक विषयो की बाते करता है। बात करते-करते कभी वह उत्तेजित हो जाता है, कभी अत्यन्त गम्भीर। वह यह भी भूल जाता है कि किससे क्या कह रहा है। न कहने योग्य बाते भी वह कह जाता है। और जब वह ये सब बातें कहता है तो एक तीखी दृष्टि से मेरी ओर देखता है। उस दृष्टि को मैं बर्दाश्त नही कर सकता। मेरी आखें झप जाती हैं, कभी-कभी मन होता है कि फोड दू उसकी आखें।

सच ही कह दू? दत्त के प्रति मेरे मन मे अब प्रेम नही है। मैं अब उसका मित्र तो कैसे रह सकता हू—जब उसकी स्त्री का जार हू। सरासर उसे धोखा दे रहा हू। आप जो चाहे समझें, मन मे चाह उठती है—दत्त मर जाए, और रेखा सोलह आना मेरी हो जाए। अब रेखा को मुझसे छीन कौन सकता है! परन्तु दत्त की गम्भीरता बडी भयानक है। कभी-कभी तो वह सचमुच भयानक हो उठता है।

क्या वह मुझ पर शक करता है? इसी से वह इस प्रकार की बातें करता है। उसे सेक्स-सबधी पुस्तकें पढने का शौक भी बेहद बढ गया है।

"रेखा, सच-सच बता दो। क्या तुम दत्त को प्यार करती हो ?"

"नही करती। मैं तुम्हे प्यार करती हू। औरत दो मर्दों को प्यार नही कर सकती, नहीं कर सकती! तुम अब यदि मेरे प्यार का प्रतिदान न करोगे, मेरी रक्षा न करोगे, तो मैं कही की न रहूगी।"

"लेकिन रेखा, मैं भी तो तुम्हे प्राणो से अधिक प्यार करता हू। तुम कहो—मैं तुम्हारे लिए क्या करू ?"

"मैं दत्त से कह दूगी साफ-साफ कि मैं बेवफा हू। तुम्हे प्यार नही करती। तुम मुझे त्याग दो। वे मुझे त्याग देगे, तो मैं तुमसे ब्याह कर लूगी, जैसे माया ने वर्मा से कर लिया है।"

रेखा के इस प्रस्ताव से मैं झमेले मे पड गया। मैं समझ ही न पाया कि क्या जवाब दू। पहले भी एक-दो बार उसने यही बात सकेत मे कही थी, पर आज तो उसने साफ-साफ कह दी। मैंने कहा, "रेखा, मुझे सोचने का समय दो। ये बडी गम्भीर बाते है। खूब सोच-विचारकर हमे अगला कदम उठाना पडेगा।" तो इस पर रेखा को गुस्सा आ गया। गुस्से मे पहले कभी मैंने उसे देखा न था। बडी सुन्दर लग रही थी वह। गुस्से मे उसके गाल लाल हो गए थे। फूले हुए लाल होठ फडक रहे थे, नयनो मे बडे-बडे आसुओ के मोती सज रहे थे। उसने गुस्सा होकर कहा

"अब क्या सोच-विचार करोगे ? यहा तक आकर क्या फिर पीछे हम लौट सकते है ? ऐसा ही था तो पहले ही सोच-विचार करते। अब तो मैं हलाहल पी चुकी, अब तो मरना ही होगा। सोच-विचार से क्या होगा अब ?"

मैंने उसे बहुत ढाढस दिया, समझाया-बुझाया। पर वह तो निरन्तर रोती रही, रोती ही रही। फिर उसने न जाने कहा से एक हिम्मत मन मे सचित करके कहा, "नही-नही, आज ही इसका फैसला कर दो। बोलो, तुम मुझसे ब्याह करोगे ? मैं दत्त से सब-कुछ खोलकर कह दू ?"

भला मैं एकाएक उसका प्रस्ताव कैसे मान सकता हू! कितनी बदनामी होगी मेरी! माया के मुकदमे से और उसके चले जाने से मैं पहले ही काफी

"पर रेखा, यह तो सोचो, यह कैसे हो सकता है ! मैं एक प्रतिष्ठित सरकारी नौकर हू । ऐसा करूगा तो नौकरी तो खत्म ही हुई समझो । पर तुम्हारे लिए मैं इतना बलिदान सह सकता हू । खुशी से । पर बेबी है । तुम्हारा भी लडका है । इन्हे कैसे छोडा जाएगा ? फिर हम जाएगे भी कहा ? क्या हम लोग ऐसे नगण्य है कि जहा जाए वही छिप जाए ? रेखा, तुम्हारा यह प्रस्ताव अमल मे नही लाया जा सकता है ।"

"तो फिर पहली बात ही रहे ।"

"तलाक और ब्याह वाली ?"

"हा ।"

"उस पर हम विचार कर सकते है । परन्तु तुम अभी दत्त की मनोवृत्ति का अध्ययन करो । उसके मन की थाह लो । अपने प्रति उसके मन मे घृणा पैदा करो । तभी शायद इस काम मे सफलता मिलेगी ।"

"मैं तो उनसे घृणा करती हू । कह चुकी हू । अब उनके मन मे कैसे घृणा उत्पन्न करू ?"

"मैं सोचूगा और तुम्हे राह बताऊगा । तुम घबराओ मत । सब ठीक हो जाएगा ।"

परन्तु वह मेरे वक्ष पर गिरकर फफक-फफककर रोने लगी । उसने कहा, "हाय, मैं कही की न रही ! किस कुक्षण मे मैंने अपना मान डिगाया, अपना शील भग किया, अपनी कुल-लाज डुबोई ! मुझे तो अब मर जाना ही चाहिए । फिर मैं जान ही दे दूगी, तुम यदि मुझे सहारा न दोगे । मुझे इस तरह गिराकर तुम दूर खडे नही रह सकते ! मुझे सहारा देना होगा । मेरे साथ मरना होगा । अब मेरी इज्जत तो गई । जब यह बात, मेरी जिन्दगी का यह काला काम—पत्नी होकर परपुरुष के सम्पर्क की बात जब मेरी जान-पहचानवाली औरते सुनेगी तो क्या कहेगी ? कैसे मैं उन्हे मुंह दिखाऊगी । कहो तो सही ।"

इतना कहते-कहते वह मेरी गोद मे गिर गई । मुझसे उस बदनसीब को ढाढस देते न बना ।

मेरा मन भी उसके लिए दुखी हुआ। पर अब किया क्या जा सकता है। क्या उससे ब्याह कर लू ? दत्त ने सब कुछ साफ-साफ कह दी ? नही-नही, यह अभी ठीक नही होगा। सोच-समझकर ही मै आगे कदम उठाऊगा।

# रेखा

आज चौथा दिन है, दत्त घर पर नहीं है। सरकारी काम से दौरे पर वाहर गए हैं। अभी और दस दिन लगेंगे उनके लौटने मे। इस घर मे व्याह-कर आने के वाद यह दूसरा अवसर है जव वे मुझे घर छोडकर वाहर गए हैं। किन्तु तव मे और अव मे कितना अन्तर पड गया है! तव वे केवल तीन दिन को ही गए थे, और आठ दिन प्रथम से जाने की चिन्ता व्यक्त करने लगे थे। उस चिन्ता मे कितनी व्याकुलता थी! उसे देखकर मेरा मन कैसा हो गया था! जैसे मैं इन तीन दिनो के वियोग मे जिन्दा ही नही रहूगी। तव तो नया ही मेरा व्याह हुआ था, शायद दो या ढाई साल ही व्याह को हुए थे। प्रद्युम्न तव शिशु ही था। जव वे गए थे—मैं कितना रोई थी! मुझे ढाढस देने मे वे भी रोने लगे थे। पहली ही वार उस सिंह की सी प्रकृति के पुरुष को मैंने रोते देखा था। और जव वे चले गए तो जैसे मेरा सारा ससार अधेरा हो गया था। भीतर-वाहर सर्वत्र एक अभाव ही अभाव मुझे दीखने लगा था। न खाना अच्छा लगता था, न नीद आती थी। दिन-दिन-भर मैं प्रद्युम्न से उन्ही की वातें करती थी। वेचारा शिशु कुछ समझता न था, मेरे नेत्रो मे आनन्द की झलक देखकर या प्रेम की पीडा देखकर वह हँसता था, और मैं उसे छाती से लगा लेती थी। कितना सुख मिलता था मुझे उस समय शिशु प्रद्युम्न के आलिंगन मे! जैसे वह उन्ही का एक छोटा-सा सस्करण हो। जैसे वे ही सिकुडकर मेरे हृदय का हार वन गए हो। मैं तव जागते ही सपने देखती थी। उनकी मेघगर्जन-सी हँसी अपने कानो से सुनती थी। उनके प्यार का अपने प्रत्येक अग पर

है, देखते ही गुस्से मे भर जाता है। शायद नौकर लोग हमारी पीठ-पीछे आलोचना भी करते है, पर प्रकट मे कहने का साहस नही कर सकते। मैं भी इसीसे राय को यहा न बुलाकर उनके घर जाती हू। वेवी अव पहले की भाति मुझे देखकर खुश नहीं होती, सामने से टल जाती है। वात भी वेमन से करती है। पर मुझे उसकी क्या परवाह है!

मैं चाहती हू, यह आख-मिचौनी का खतरनाक खेल वन्द हो जाए और हम खुल्लम-खुल्ला व्याह कर ले। मुझमे इतना साहस उदय हो गया है कि मैं दत्त से कह दू कि मैं उन्हे प्यार नहीं करती, राय को करती हू। वे मुझे तलाक दे दें। पर राय झिझकते हैं, टालते हैं। परन्तु अव इस वार दत्त के वापस घर लौटने से पहले ही सब हेस-नेस कर लूगी, सव वातें तय कर लूगी। अव इस तरह तो नही रहा जा सकता न!

विवाह का उद्देश्य है कि स्त्री-पुरुष दोनो पूर्णरूपेण परस्पर सतुष्ट हो, सुखी हो, दोनो के जीवन विकसित हो। वैवाहिक जीवन जहा भूतल पर स्वर्ग का राज्य है, वहा नरककुण्ड भी हो सकता है। सव लोग वैवाहिक जीवन की त्रुटियो की परवाह नही करते हैं। और उनके वैवाहिक जीवन अन्त मे असफल होते हैं। अन्त मे तुलसी की वही कहावत चरितार्थ होती है, 'तुलसी गाय वजाय के दियो काठ मे पाय।' स्त्री-पुरुष का जो आत्म-समर्पण एकान्त सुख का उद्गम है, वही नितात नीरस वन जाता है।

वास्तव मे विवाह एक विज्ञान है। वैज्ञानिक जीवन मे हम विचारहीन तरीके पर नही चल सकते। स्त्री-पुरुष के वीच जो एक वैज्ञानिक सीमा है उसे जाने या माने विना हम प्रेममूलक विवाह मे भी सुखी नही रह सकते। नि सन्देह विवाह मे प्रेम का वडा प्रभाव है और छोटी-मोटी असुविधाए और वास्तविकताए तो किसी तरह वर्दाश्त की जा सकती है, परन्तु मैं जानती हू वास्तविकताओ की लपेटो मे प्रेम भस्म हो जाता है, और तव वैवाहिक जीवन मे जलन ही जलन रह जाती है।

मैं आदर्श की वात नहीं कहती। समाज मे हम यह मानकर ही चल रहे हैं कि स्त्री-पुरुष का जीवन मिलकर ही पूर्णाग होता है। स्त्री के विना

जीवन मे जितनी ही अधिक दिलचस्पिया होती है जीवन का उतना ही विस्तार हो जाता है। सुख-दु ख भी उतना ही बडा हो जाता है। परन्तु स्त्रिया जो घरो मे निष्क्रिय बैठी रहती है, वे उनमे भाग नही ले सकती। उनके लिए प्रेम और काम ही एक महत्त्वपूर्ण वस्तु रह जाती है। परन्तु यह शायद ठीक नही है। स्त्री को कन्धे से कन्धा मिलाकर पति से सहयोग करना हितकर हो सकता है, और यह सहयोग वैसा ही अभिन्न होना चाहिए जैसा काम-साहचर्य मे होता है।

मैं स्वीकार करती हू कि विवाह का अर्थ जिम्मेदारियो का प्रारम्भ है। मा-बाप के यहा निर्द्वन्द्व जीवन व्यतीत करनेवाली लडकी पर एकबारगी ही जिम्मेदारियो का तूफान उमड आता है, परन्तु यह भी तो सच है कि जीवन के सम्बन्ध मे पति-पत्नी को एक सहयोगी साथी होने के माने एक स्वस्थ और प्राकृतिक दर्शन है। दर्शन से मेरा मतलब कल्पना की क्लिष्ट उडानें नही है। दर्शन से मेरा अभिप्राय वह समीक्षादृष्टि है जिससे हम जीवन को देखते हैं। बेशक जब हम जीवन पर व्यापक दार्शनिक दृष्टि डालते हैं तब प्रेम और कामतत्त्व ही नही, सम्पूर्ण जीवन ही जिम्मेदारियो की अपेक्षा नगण्य रह जाता है, परन्तु हमेशा नही। जीवन तो बाहर-भीतर खतरो से भरा हुआ है ही। ससार मे भूचाल आते हैं, उल्कापात होते हैं, महामारी फैलती है, जनपदोद्ध्वस होता है। हिंस्र जन्तु है, हिंस्र मनुष्य हैं ये सब तो नित्य ही हमारे जीवन के चारो ओर हैं और उनके सहारक आक्रमण हमे सावधान होने की कोई चेतावनी भी नही देते। फिर भी हम हँसते-बोलते है, खाते पीते हैं, मौज-मज़ा करते हैं, खतरो के डर से हम सदैव आशकित थोडे ही बने रहते हैं। इसी भाति वैवाहिक जीवन की जिम्मेदारिया बहुत भारी है—पर उन्हे बर्दाश्त करने का साहस और बल तो हम प्रेम और कामतत्त्व ही से पाते है। कामतत्त्व और प्रेम ही तो हमे—स्त्री और पुरुप को—भिन्नलैगिकता के माध्यम से एक इकाई मे बाधता है। यही तो स्त्री-पुरुप के प्राणो का गठबन्धन करता है।

यदि स्त्री-पुरुप के जीवन-दर्शन के दृष्टिकोण भिन्न हो—एक उसे

मैं जानती हू, ऐसी हालत मे पुरुप उसके मनम्तन्त्व को न जानकर उसपर बलात्कार करता है। ऐमा बलात्कार ऐमी ही अवस्था मे दत्त मुझपर कर चुके हैं। और मच पूछा जाए तो उस बलात्कार ने ही मेरा मन उनकी ओर से विरक्ति से भर दिया है। मानती हू, दत्त मुझने अब भी प्रेम करते है। पर मैं अब यह भी जान गई हू कि कोरा प्रेम वैवाहिक जीवन को सफल नही कर मकता। प्रेम के पोपक और तत्त्व भी हैं। जैसे जरा-से हीरे को बडे-से मखमली बक्स मे मजाकर रखा जाता है, वैसे ही प्रेमतत्त्व को व्यापक जीवनदर्शन के बडे क्षेत्र की आवश्यकता है। जो पति अपनी पत्नी के रति-प्रेम के लिए वह सुन्दर मखमली बक्स नही बना पाते, वे प्रेम-रत्न को आगे-पीछे कभी न कभी खो ही देते हैं।

असफल विवाह मे विवाह-विच्छेद होगा ही। इस मसले पर मैं आजकल गम्भीरता से विचार कर रही हू। पहले माया के प्रति मेरे मन मे तिरस्कार का उदय हुआ था कैसे उसने अपने बाईस वर्ष के वैवाहिक सम्बन्ध को भग कर दिया! पर अब मैं देखती हू उन परिस्थितियो और जिम्मेदारियो को जो वैवाहिक जीवन को इस मोड पर ले आती है। मैं भी अब उस मोड पर पहुच गई हू। और जिम्मेदारियो तथा परिस्थितियो का—जो मेरे ऊपर से गुजर रही हैं, अध्ययन कर रही हू। मैं अब चाहती हू, दत्त से जल्द से जल्द मेरा विवाह-विच्छेद हो जाए, और जल्द से जल्द मेरा राय से विवाह हो जाए।

भला इस चोरी-छिपी के जीवन मे क्या तुक है? और इतनी बडी चोरी? शरीर ही का चोरीचोरा? गैर पुरुप को समर्पण? गजब है! किसी दूसरी स्त्री के ऐसे आचरण को मैं कदापि बर्दाश्त नही कर सकती थी। पर अब तो मैं स्वय ही वह गर्हित आचरण कर रही हू, और अपनी ही नजरो मे गिरती जाती हू। कैसे बर्दाश्त करू मैं इस जीवन को! नही, नही। यह नही हो सकता! अब तो दत्त के आने से प्रथम ही सब-कुछ निर्णय हो जाना चाहिए।

राय टालते है। क्यो टालते हैं भला? क्या वे मुझे प्रेम नही करते?

# रेखा

स्त्री को लोग 'रत्न' कहते हैं। स्त्री-रत्न की वडी-वडी बातें वढी-चढी सुनाते हैं। परन्तु अन्य रत्नो की अपेक्षा स्त्री-रत्न वहुत सस्ता है, क्योकि वह दुष्प्राप्य नही है, आसानी से मिल जाता है। परन्तु केवल यही वात नही है, स्त्री के लिए वडे-वडे मूल्य भी चुकाए गए हैं। सोने की लका जला कर छार कर दी गई थी। कुरुक्षेत्र-सग्राम मे रक्त के गारे मे खडे होकर भीम ने दु शासन के वक्ष से एक चुल्लू खून लेकर द्रौपदी की रक्त से माग भरी थी। ट्राय के भीषण सग्राम मे समूची एक पीढी ध्वस हो गई थी।

आज भी स्त्री रत्न ही है। पर उसके मूल्याकन का दृष्टिकोण नया वन गया है। सेवा और प्रेम के वदले कष्ट सहकर मौन रहना स्त्री का सवसे वडा गुण माना गया है, पर शायद तव भी और अव भी स्त्री का मूल्य केवल इस वात पर आका जाता है कि वह कहा तक पुरुष को अपना-पन अर्पण कर सकती है, कहा तक पुरुष की प्रवृत्ति को निवद्ध और तृप्त रख सकती है। हिन्दुओ के धर्मशास्त्रो और आचारशास्त्रो मे भी स्त्री के इस गुण को 'सती-धर्म' कहा गया है और उस पर यह हाशिया चढाया गया है कि स्त्री के लिए इससे वढकर दूसरा कोई गुण नही हो सकता।

परन्तु यह स्त्रियो के लिए रिजर्व सतीत्व 'आचरण की पवित्रता' नही कहा जा सकता। आचरण की पवित्रता की सीमा मे तो यह गुण तव आता जव स्त्री-पुरुष दोनो के लिए समान होता। पर 'सतीत्व' केवल स्त्रियो ही के लिए है। उसके मुकावले पुरुष की वह उच्छृ खल प्रवृत्ति है

परन्तु यह ठीक है कि सतान-उत्पत्ति एक महत्त्वपूर्ण वात है और सामाजिक जीवन का वह अत्यन्त आवश्यक क्रिया-कलाप है, पर विज्ञान ने अब यह प्रमाणित कर दिया है कि सौ मे सत्तर स्त्रियो के सतान न होने का कारण पुरुषो का दोष है।

पर इसको छोडिए। और भी वातें हैं जिनसे यह कहा जा सकता है कि पुरुष स्त्री से अपने स्वार्थ का ही सम्वन्ध रखता है, और स्त्रिया इस वात को नही समझती। समझ भी कैसे सकती है? विवाह के वाद जो छोटी-मोटी सुख-सुविधा और स्वामित्व उसे मिल जाता है, वह तो उसी मे खो जाती है। पति के जरा-से आदर-सत्कार, लाड-प्यार को देखकर, वह यह कल्पना भी नही कर सकती कि वह मेरी मगल-कामना नही करता। न वह अपने पिता के ही सम्वन्ध मे ऐसी वात सोच सकती है, परन्तु जव स्त्री-जाति के समूचे सुख-दुःख और उसके विवश जीवन पर विचार किया जाता है तो पता लगता है कि पति और पिता दोनो ही ने केवल अपना ही मगल, अपनी ही सुविधाए देखी है, स्त्री की नही। स्त्री को यह अवश्य सोचना चाहिए कि ससार-भर मे जीवन के नियमो का निर्माण पुरुषो ने किया है। पुरुषो के स्वार्थों और उनकी सुख-सुविधाओ को उन्होने प्राथमिकता दी है, और उन नियमो का निर्माण करते समय वे न पिता थे, न भाई, न पति, वे केवल पुरुष थे और स्त्रिया उनकी आत्मीय न थी, केवल स्त्री थी। पिता ने पिता वनकर पुत्री के सुख-दुःख का विचार नही किया, न पति ने पति वनकर पत्नी पर ममता की। वे पुरुष थे, इसलिए केवल पुरुष के स्वार्थ को सामने रखकर उन्होने समाज और धर्म-सम्वन्धी कानून वनाए, और उन सव नियमो-कानूनो का यही अभिप्राय रहा कि स्त्रियो से पुरुष अपना प्राप्तव्य अधिक से अधिक कितना और कैसे वसूल करे। मनु आए, पाराशर आए, वुद्ध आए, मूसा आए, ईसा आए, शकर आए, और श्लोक पर श्लोक रचकर, सिद्धात पर सिद्धात रचकर शास्त्र-वचन की उनपर मुहर लगा दी। इस प्रकार पुरुषो के स्वार्थ ने धर्म वनकर समाज पर शासन करना आरम्भ कर दिया। धर्म के सामने भला

परन्तु यह ठीक है कि सतान-उत्पत्ति एक महत्त्वपूर्ण बात है और सामाजिक जीवन का वह अत्यन्त आवश्यक क्रिया-कलाप है, पर विज्ञान ने अब यह प्रमाणित कर दिया है कि सौ मे सत्तर स्त्रियो के सतान न होने का कारण पुरुषो का दोष है।

पर इसको छोडिए। और भी बातें हैं जिनसे यह कहा जा सकता है कि पुरुष स्त्री से अपने स्वार्थ का ही सम्बन्ध रखता है, और स्त्रिया इस बात को नही समझती। समझ भी कैसे सकती हैं ? विवाह के बाद जो छोटी-मोटी सुख-सुविधा और स्वामित्व उसे मिल जाता है, वह तो उसी मे खो जाती है। पति के ज़रा-से आदर-सत्कार, लाड-प्यार को देखकर, वह यह कल्पना भी नही कर सकती कि वह मेरी मगल-कामना नही करता। न वह अपने पिता के ही सम्बन्ध मे ऐसी बात सोच सकती है, परन्तु जब स्त्री-जाति के समूचे सुख-दु ख और उसके विवश जीवन पर विचार किया जाता है तो पता लगता है कि पति और पिता दोनो ही ने केवल अपना ही मगल, अपनी ही सुविधाए देखी हैं, स्त्री की नही। स्त्री को यह अवश्य सोचना चाहिए कि ससार-भर मे जीवन के नियमो का निर्माण पुरुषो ने किया है। पुरुषो के स्वार्थों और उनकी सुख-सुविधाओ को उन्होने प्राथमिकता दी है, और उन नियमो का निर्माण करते समय वे न पिता थे, न भाई, न पति, वे केवल पुरुष थे और स्त्रिया उनकी आत्मीय न थी, केवल स्त्री थी। पिता ने पिता बनकर पुत्री के सुख-दु ख का विचार नही किया, न पति ने पति बनकर पत्नी पर ममता की। वे पुरुष थे, इसलिए केवल पुरुष के स्वार्थ को सामने रखकर उन्होने समाज और धर्म-सम्बन्धी कानून बनाए, और उन सब नियमो-कानूनो का यही अभिप्राय रहा कि स्त्रियो से पुरुष अपना प्राप्तव्य अधिक से अधिक कितना और कैसे वसूल करे। मनु आए, पाराशर आए, बुद्ध आए, मूसा आए, ईसा आए, शकर आए, और श्लोक पर श्लोक रचकर, सिद्धात पर सिद्धात रचकर शास्त्र-वचन की उनपर मुहर लगा दी। इस प्रकार पुरुषो के स्वार्थ ने धर्म बनकर समाज पर शासन करना आरम्भ कर दिया। धर्म के सामने भला

व्यक्ति का सुख-दुःख, स्नेह, भलाई-बुराई किस काम आ सकती है? इसी-का तो परिणाम यह हुआ कि मुर्दा पति के साथ ज़िन्दा स्त्री को चिता पर जला डालना भी स्त्री-धर्म की चरम सीमा मान ली गई।

प्राचीन युग मे लोग अपने पुत्रो-पुत्रियो की भी देवताओ के सामने वलि दे दिया करते थे। यहूदी सत इब्राहिम ने भी पुत्र के वलिदान का सकल्प किया था। आज हमे यह वात सुनने मे अटपटी लग रही है कि कैसे पिता अपने पुत्र और कन्या की हत्या करके पुण्यार्जन करने की लिप्सा रखते थे। ऐसे अनेक राजाओ के भी उदाहरण हैं। सर्वसाधारण की घट-नाओ का तो इतिहास ही नही मिल सकता है। यह नही कहा जा सकता कि उन पिताओ के हृदय मे प्रेम न था। पर पुण्य का वजन प्रेम से अधिक था। और पुण्य जव धर्म का रूप धारण कर गया तो स्नेह, ममता तथा व्यक्तिगत अन्य वाते सभी पीछे रह गईं। यह धर्म ही का चमत्कार था कि परम आत्मीय ही परम शत्रु के समान निष्ठुर वधिक वन जाते थे।

समाज के ठेकेदारो से क्या मैं पूछ सकती हू कि ये स्वार्थियो द्वारा अपने समाज का निर्माण करनेवालो के लिखे हुए ग्रथ धर्मशास्त्र क्यो है? खासकर मैं हिन्दू पण्डितो से यह प्रश्न करूँगी, क्योकि वे अपने को परम पवित्र और दूसरे सव लोगो को अपवित्र म्लेच्छ कहते हैं। उनका दावा है कि हमारे आचारशास्त्र को छोडकर दुनिया के सभी आचार-व्यवहार हीन हैं। अर्थात् इन धर्माचार्यो के अतिरिक्त और कोई मनुष्य ही नहीं है। उनका कहना है कि ये धर्मशास्त्र अटल हैं। इनके नियमो का उल्ल-घन नही हो सकता। वे नही मानते कि समय के साथ जीवन के नियम भी वदलते हैं। पूछिए इनसे कि क्या ये आज अपने धर्मशास्त्र के नियम अनुसार किसी सभ्य-सुशिक्षिता स्त्री को मुर्दा पति के साथ जला सकते है? इनके शास्त्रो मे तो असुर-विवाह है, राक्षस-विवाह है, नियोग-विधि से क्षेत्रज सतान पैदा करने का विधान है। ये इन सव धर्मकृत्यो को समाज मे प्रचलित कर लें। केवल हम स्त्रियो ही को पतिव्रत-धर्म सिखाते है, हमें ही सती-धर्म की शिक्षा देते है!

मैं पूछती हू, स्वार्थपरता और चरित्रगत पाप-वुद्धि अधिक किसमे है—पुरुष मे या स्त्री मे ? क्या कोई माई का लाल ऐसा धर्मात्मा ससार मे हैं जो इस बात का निपटारा करे कि सामाजिक जीवन को विशुद्ध रखने के लिए स्त्री और पुरुष मे से किसपर अधिक दृष्टि रखना उचित होगा और किसे अधिक दण्ड मिलना चाहिए। क्या यह एक पाशविक अत्याचार नही हैं कि स्त्री की तो एक रत्ती-भर भी भूल क्षमा नही की जा सकती, परन्तु पुरुपो को सोलह आना क्षमा-दान? क्या आप इसे पुरुपो की धीगामुश्ती नही समझते ? और आप क्यो इसका मूल कारण नही जानते ? तब मैं बताती हू—इसका कारण है कि समाज पुरुष का है, स्त्री का नही। पुरुप चाहे जितना घृणित हो—पर वह पति है। भला पति से कैसे घृणा की जा सकती है ! यह तो पाप जो ठहरा ! शास्त्र कहते हैं, पति चाहे जितना घृणित कुमार्गी हो, सती स्त्री के लिए वह देवता है। सन्त तुलसीदास कहते हैं—

वृद्ध रोग वस जड धनहीना। अध, वधिर क्रोधी अति दीना।।
ऐसेहु पति कर किय अपमाना। नारि पाव जमपुर दुख नाना।।
एकइ धर्म एक व्रत नेमा। काय वचन मन पतिपद प्रेमा।।

कहिए, हुए न सुनकर आपके कान पवित्र ! असल बात क्या है, वह आप सुनेंगे ? सुनिए, पुरुष की इच्छा और अभिरुचि ही असल बात है, वही समाज की सुनीति है। अहा हा हा ! हमारा यह देश साक्षात् भगवान् का देश है। भगवान् ने यहा दस बार शरीर धारण किया था। परित्राणाय साधूना विनाशाय च दुष्कृताम्'—भला इस देश के शास्त्रो के अनुसार और किस देश का शास्त्र है ? इस देश के समान और धर्म कहा है ? नही है, नही है, नही है !

एक युग था जब यूरोप मे तलाक-विच्छेद के सबध मे काफी सख्तिया थीं। उसके कारण अव्यवस्था और लज्जाजनक बातो की वृद्धि होती थी। पुरुपो और स्त्रियो मे व्यभिचार बढता था। स्त्रियो की सामाजिक स्थिति अति हीन हो गई थी। स्त्रियो का एकमात्र काम पुरुषो की चापलूसी रह गया था। तलाक देने की स्वतन्त्रता जब स्त्री को मिल गई तो उनका विकास

हुआ।

मैं तलाक के समर्थन मे कुछ नही कह रही। मैं तो स्त्रियो की सामाजिक दासता का विरोध कर रही हू। पुरुष उन पर अत्याचार भी कर सकते हैं, उन्हे त्याग भी सकते हैं, पर स्त्रिया पुरुषो को नही त्याग सकती। मैं पूछती हू—क्यो नही ? हर बार पूछूगी—क्यो नही ?

अब कानून बन गया है। पर उसका उपयोग मेरी-जैसी स्त्री के लिए भी दूभर है। हजारो-लाखो असभ्य-दुर्बल स्त्रिया कैसे उस बन्धन से छुटकारा पा सकती हैं, जिसमे पुरुषो ने उनकी आत्मा तक को बाध रखा है ?

एक बार नेपोलियन ने एक महिला से कहा था, "मै नहीं चाहता कि स्त्रिया राजनीति मे हस्तक्षेप करे।" तब उस महिला ने जवाब दिया था, "आप ठीक कहते हैं। परन्तु जिस देश मे स्त्रियो के सिर काटे जाते है, उस देश मे यह स्वाभाविक है कि स्त्रिया यह जानना चाहे कि उनके सिर क्यो काटे जा रहे हैं।"

किसी भी देश मे जाइए। कही भी स्त्री को उसका प्राप्तव्य नहीं चुकाया जाता। सर्वत्र ही उसके साथ अन्याय अत्याचार होता है। वह पुरुष का एक उपाग बनकर जीती है। केवल यही नहीं कि पुरुष स्त्री पर सदा अत्याचार करता आया है, सदा ही उसे न्यायोचित प्राप्तव्य से उसने वचित भी रखा है। मेरा यह अभियोग सभी देशो और सभी जातियो पर है।

असल बात यह है कि बलात् सहयोग एक निकृष्ट काम है। यदि स्त्री पर यह सहयोग लादा जाएगा तो उसकी स्थिति अवश्य गिर जाएगी। मै पहले ही कह चुकी हू कि धर्म की कट्टरता और अधर्म के अत्याचार ने मिलकर स्त्रियो को नीचे गिरा दिया है। धार्मिक आवेश मे विरक्ति होती है। मन मे यह भाव उत्पन्न करना पडता है कि सासारिक वस्तुओ मे हमारी कोई आसक्ति नही है। सासारिक वस्तुओ मे स्त्री भी है। अन्तत स्त्री पुरुष की जीवन-सगिनी न होकर उसकी एक सम्पत्ति, सचय की वस्तु बन गई है। फिर क्यो न पुरुष उसका मनमाना उपयोग करेगा ?

आचारशास्त्र की एक प्रारम्भिक बात यह है कि मनुष्य अपनी स्वाभा-

नता को वहा तक खीच ले जाता है जहा तक किसी की समकक्ष स्वाधीनता से वह टकरा न जाए। यह एक प्रकार से मनुष्य के कार्यों पर नियन्त्रण है। और समाज के सभी प्रश्न इसी नियन्त्रण मे समा जाते हैं। इसे जिस समाज ने जितना अग्राह्य माना है उतना ही उसने स्त्री के अधिकारो तथा स्वतन्त्रता का अपहरण किया है।

परन्तु सभ्य मनुष्य की स्वस्थ और शुभ बुद्धि स्त्री को जो अधिकार देती है, वही मानव-समाज की ठीक नीति है। उसी से मनुष्य का कल्याण होगा। स्त्री अबला है, पुरुष सबल है। पर वह उदार और स्नेहमयी अधिक है। अब जब तक पुरुप यह समझता है कि स्त्री पुरुप की सम्पत्ति है, उसकी भोग्य-वस्तु है, तब तक आज भी नारी से उसका कोई समझौता नहीं हो सकता। पाश्चात्त्य देशो मे ऐसा है कि जब तक वे स्त्री और पुरुप तन-मन से स्वाभाविक बन्धन मे नही बध जाते, कानूनी बधन मे नही बधते। जब स्वाभाविक बन्धन ही न रहेगा, तब कानूनी या सामाजिक या धार्मिक चाहे भी नाम उसे दीजिए, वह बधन सफल नही हो सकता, न उसे समाज के लिए श्रेयस्कर समझा जा सकता है।

आज हमारे देश ने भी तलाक स्वीकार कर लिया है। मैं कभी भी उसके पक्ष मे नही थी, पर स्वय इस स्थिति मे आ पहुची हू कि तलाक मेरे लिए अनिवार्य हो गया है। इस समय तलाक के सुभीते बढ गए है। इससे यह सम्भावना विकसित हुई है कि जिस समय एक-पत्नी-विवाह की प्रथा का विकास हो रहा था, उस समय कानून के द्वारा पुरुष और स्त्री को मिलाकर एक करना विवाह का एक अग मान लिया गया, जो वास्तव मे एक प्रकार का सौदा था। अब प्रेम के द्वारा दोनो का मिलकर एक होना महत्ता नही रखता। कानून के द्वारा मिलकर एक होना ही अधिक महत्त्व-पूर्ण है। परन्तु यह व्यवस्था देर तक न चल सकेगी और कानून के द्वारा स्त्री-पुरुप के मिलने की अपेक्षा प्रेम के द्वारा मिलना ही अधिक उपयुक्त प्रमाणित होगा, और स्त्री-पुरुप के सयोग मे उच्च कोटि की भावनाओ अथवा विचारो का अधिकाधिक समावेश होगा। और तब समाज यह भी

समझ जाएगा कि आज के सभ्य समाज मे विवाह की जो परिपाटी अब तक चली आती रही है वह असभ्य-बर्बर सामन्ती युग की परिपाटी का ही एक त्रुटित रूप था, जो शारीरिक एव मानसिक दोनो ही धरातलो पर सर्वथा असफल रहा।

# दिलीपकुमार राय

अब तो रेखा अचल चट्टान की भाति मेरे सामने अड गई है। उसकी सारी भावुकता, कोमलता, प्रेम जमकर वर्फ का ग्लेशियर बन गया है—दुरूह-दुर्गम और असह्य, सख्त। वह जिद ठान बैठी है कि मैं उसे विवाह की स्वीकृति दे दू, और दत्त के आने पर वह सब-कुछ उससे कह दे, और तलाक देने पर दत्त को मजबूर करे। फिर हम ब्याह करके पति-पत्नी का शान्त जीवन व्यतीत करे। बेचारी गरीब नही समझती कि अब उसके और मेरे लिए पति-पत्नी का शान्त जीवन व्यतीत करना कितना कठिन है, लगभग असम्भव है अब वह एक पवित्र, अछूती, विबाह-वय के योग्य अबोध कन्या नही है, पर-स्त्री है, एक प्रतिष्ठित और एकनिष्ठ पति की विवाहिता पत्नी है, जिसका समाज मे एक स्थान है। इसके अतिरिक्त वह एक पुत्र की मा है। और इधर मैं ढलती उम्र का एक लम्पट व्यक्ति हू। सचमुच मैं लम्पट तो हू ही। कितनी ही कुलवधुओ और कुमारिकाओ का शील मैंने भग किया है, पवित्रता नष्ट की है, विलास किया है, झूठे झासे दिए हैं। आतमभोग को मैंने प्रधानता दी है। स्त्री को भोग-सामग्री समझा है। विवाहिता पत्नी तो मेरी थी माया—वडी योग्य और निष्ठा-वान् पत्नी थी। उसे मैंने खो जाने दिया। चुपचाप नही, अपनी सब इज्जत-आवरू के साथ। अब तो अदालत ने भी मेरे चरित्र पर दुश्चरित्रता की मुहर लगा दी। अब सम्भ्रान्त परिवार के लोग अन्तरग रूप मे अपने घर मे मेरा स्वागत करते कतराते है। सम्भ्रान्त महिलाए मुझसे मिलने से वचना चाहती है। कुछ प्रौढाए मुझे कौतूहल से देखती हैं। माया के सम्बन्ध

मे व्यग्य-बाण कसती हैं—मुझे कष्ट पहुचाने के लिए, मेरा उपहास करने के लिए, मेरी ही दृष्टि मे मुझे गिराने के लिए। मगर मैं उनका कुछ नही कर सकता, तिलमिलाकर रह जाता हू।

मेरी उम्र ढल चुकी है। अब तो मैं पचास के पेटे मे पहुच चुका हू। और मेरी बदनामी यहा तक फैली हुई है कि मैं वेबी के लिए अच्छा लडका नही पा रहा हू। कोई प्रतिष्ठित परिवार का सम्भ्रान्त पुरुप अपने लडके से मेरी लडकी का रिश्ता करना नही चाहता, मेरी लडकी को अपनी बहू बनाना नही चाहता। मेरी वेबी निर्दोप है, सुन्दर है, बुद्धिमती है, उच्च शिक्षा-प्राप्त है। वह सब भाति योग्य वर की पात्री है, परन्तु मेरे कलकित जीवन की छाया उस पर है। मेरा कलुष उस पर छा गया है। जैसे वह एक अपवित्र वस्तु हो गई है, और समाज उसे छूना भी नही चाहता। दहेज मे मैं एक अच्छी रकम देने को राजी हू, पर तो भी लोग मेरी बात, मेरा प्रस्ताव अस्वीकार कर देते हैं। बेटी का बाप होना भी इतना कष्टकर है!—यह मैंने कभी नही सोचा था।

"जाते हि कन्या महतीह चिन्ता, कस्मै प्रदेयेति महान् वितर्क ।
दत्ता सुख यास्यति वा न वेति कन्यापितृत्व खलु नाम कष्टम् ॥"

वेबी भी अब यह बात जान गई है। उसकी विवाह की आयु बीतती जा रही है, परन्तु योग्य वर उसे अस्वीकार करते जा रहे है। इन बातो को सुन-सुनकर मेरे प्रति एक वितृष्णा के भाव उसके मन मे भरते जा रहे हैं। अब वह पहले की भाति मेरा खयाल भी नही रखती। रेखा से अब वह घृणा करती है। उसका इस प्रकार घर मे आना और मेरे साथ रहना उसे बर्दाश्त नही है। वह कई बार अपना विरोध प्रकट कर चुकी है। उसने होस्टल मे जाकर रहने को कितना हठ किया था! पहले माया ने चाहा था, तब तो वह इन्कार कर गई थी, पर अब बहुत हठ किया। खैर अब तो वह बात ही खत्म हुई—उसकी शिक्षा समाप्त हो गई। पर मै देखता हू, इस घर मे रहना अब उसे दूभर हो रहा है। लेकिन उसे कहा निकाल फेकू? क्या सडक पर फेक दू? मैं तो अपात्र को भी अब उसे दे डालने पर

आमादा हू—पर कोई मिले भी तो ! कोई हाथ भी तो फैलाए !

इस हालत मे जब बेबी के व्याह की यह बहुत बडी जिम्मेदारी मेरे सिर पर सवार है, तो मैं रेखा से व्याह करने की बात पर कैसे राजी हो सकता हू ! मेरे सामने सारी ही कठिनाइया हैं, सिर्फ बेबी ही की बात नहीं है। उन्हे मैं समझता हू। फिर मैं यदि सब लडकियो से, स्त्रियो से सम्बन्ध त्याग भी दू और रेखा के साथ व्याह कर भी लू, तो क्या अब मैं उसके साथ पति-पत्नी की तरह शान्त भाव से रह सकूगा, जबकि प्रत्येक क्षण मेरी स्मृति मे यह बात ताजा रहेगी कि रेखा एक पथभ्रष्टा पर-स्त्री है, और उसकी स्मृति मे यह कि राय लम्पट पुरुष है जिसने मेरा शील भग किया ? क्या हम प्रगाढ पवित्र पति-पत्नी रह सकते हैं ? नही-नही, नही रह सकते।

एक सप्ताह से दत्त बाहर गया है, और अब उसकी आमद है। बिला शक इस बार उस पर सब भडा फूट जाएगा। रेखा न कहे तब भी। नौकर-चाकर भी अब सब बातें जान गए है। दिन-भर और बडी रात तक घर से बाहर रेखा का रहना उससे नही छिपेगा। चाहता हू कि अब कुछ दिन रेखा यहा न आए तो ही अच्छा है। न जाने दत्त कब आ जाए ! और रेखा को वह घर पर गैरहाजिर पाए तो गजब ही हो जाएगा। न जाने तब क्या हो ! दत्त क्या कुछ कर बैठे ! वह एक खब्ती-सनकी आदमी है चरित्रवान् है—लम्पट व्यक्ति नही है। उसमे बाल-बराबर भी आत्मग्लानि नही है। रेखा के प्रति वह एकनिष्ठ पति रहा है। वह उसका दुराचार आसानी से बर्दाश्त न कर सकेगा। इसी से तो मैं डर रहा हू। चाहता हू, रेखा अब कुछ दिन न आए तो ही अच्छा है।

पर रेखा मानती नही है, मेरे इस प्रस्ताव पर गुस्सा करती है। मुझे लानत-मलामत देती है। कायर-धोखेबाज़ तक तो मुझे उसने कह दिया। और मुझे भी गुस्सा आ गया, मैंने भी कह दिया, "अपने मज़े के लिए ही तुम मेरे गले पडी हो, कोई बच्ची नही हो। मुझे दोष देने का तुम्हे क्या हक है ?"

अच्छा तो यह है कि रेखा से अब पिण्ड ही छूट जाए। अब उसका

# सुनीलदत्त

रेखा घर मे नही है तो कहा है ? कहा है ? आज दस दिन बाद मैं घर लौटा हू। कल्पना कर रहा था कि वह बराडे मे आखें बिछाए खडी होगी। अपनी अवाई का तार मैं भेज चुका था। पर यहा सन्नाटा है।

"प्रद्युम्न सो रहा है ? आया-आया, क्या तुम सो रही हो ?"

आया हडबडाकर खडी हो गई। उसने आखे मलते-मलते कहा, "जी नही।"

"लेकिन रेखा कहा है ?"

"जी-जी "

"कहो-कहो!"—क्या कोई दुर्घटना हो गई है ? रेखा मर गई है ? रेखा नही है? कितनी आशकाओ से मेरा मन भर गया है। पर आया नीची नजर किए खडी है, जवाब नही देती।

"जवाब दो आया ? क्या उसकी तबीयत खराब है ?"

"जी नही।"

"वह ठीक-ठाक तो है ?"

"जी।"

"लेकिन कहा है ?"

"जी-जी "

"जी-जी क्या बकती हो ? कहती क्यो नही ? कहा है रेखा ?"

"राय के घर गई है, अभी लौटी नही हैं।"

"क्या ? राय के घर ?"

मेरा सिर घूम गया है। आसमान नीचे आ गया है। ज़मीन सिर पर चक्कर लगा रही है। "राय के घर ? क्यो ? क्यो, क्या बात है ? क्यो गई है वह वहा इस वक्त ?"

"जी, कह नही सकती।"

"क्यो नही कह सकती ?"

"जी, मैं नही जानती।"

"मेरा तार आया था ?"

"जी।"

"रेखा ने पढा था ?"

"जी नही।"

"क्यो ?"

"वे यहा नही थी।"

"तब कहा थी ?"

"राय के घर।"

"राय के घर ? कब गई थी वहा ?"

"दोपहर खाना खाकर।"

"और अभी तक नही लौटी ? दस बज रहे हैं !"

"जी।"

"तार कहा है ?"

"यह है।"

"तार तो किसी ने पढा ही नही है। जैसा का तैसा बन्द है।"

"तुमने तार वहा भेजा नही ?"

"जी नही।"

"क्यो नही ?"

"हुक्म नही है।"

"कैसा हुक्म नही है ?"

"यह कि वहा राय के घर पर कोई नौकर-चाकर न आए।"

"क्या आज से पहले भी गई थी ?"

"रोज़ जाती हैं।"

"किस वक्त ?"

"दोपहर मे खाना खाने के बाद।"

"और आती कब है ?"

"कभी दस बजे, कभी बारह बजे रात को।"

यह क्या ? यह क्या ? ये हज़ारो तोपें कैसे गडगडा उठी ! क्या भूचाल आया है ? पैर लडखडाने लगे। सिर घूमने लगा।

"आया !"

"क्या आपकी तबीयत खराब है ?"

"खराब है। मेरा बिस्तर ठीक कर दो।"

"जी, अभी ठीक करती हू।"

और आया चली गई बिस्तर ठीक करने। मैं बैठ गया हू, प्रद्युम्न के पास। प्रद्युम्न जग गया है। वह मेरे गले मे दोनो हाथ डालकर लिपट गया है। उसे छाती से लगाकर मैं रो रहा हू। इतने आसू कहा से उमडे चले आ रहे हैं ? कलेजा मुह को आ रहा है। क्या जूडी चढी है, या मैं मर रहा हू ?

प्रद्युम्न कह रहा है, "डैडी, "मेरे लिए क्या लाए हो ?"

उसके होठ हिलते दीख रहे है। पर उसने क्या कहा, सो सुनाई नही दिया। ये तोपे जो गडगडा रही हैं कान मे ! मैंने कहा

"क्या कहा बेटे ?"

"डैडी, ममी मुझको अकेला छोडकर चली जाती है। मुझको डर लगता है। तुम उनको मारना।"

"अय, मारना, ठीक-ठीक।" वह आया आ रही है।

' मालिक, आपका बिस्तर तैयार है। आप आराम कीजिए।"

"जाता हू, जाता हू। तुम भी सो जाओ बेटे। तुम्हारे लिए मैं बहुत-सी चीज़ें लाया हू, सुबह दूगा।"

"नही, अभी दो।"

"आया, वह बक्स खोल लो। यह चाभी लो। बेबी को उसके खिलौने वगैरह दे दो। मैं सोऊगा।"

"मेम साहब आएगी तो ,"

"उनसे कह देना, मुझे डिस्टर्ब न कर। मै सोना चाहता हू।"

और मैंने शयनागार मे आकर भीतर से कुण्डा बन्द कर लिया अब मैं अकेला हू। कोई मुझे देख नही रहा। हा, रेखा अब तुम कहा तुम कहा हो ?

अरे बोलो। बोलो रेखा। कहा छिपी हो डार्लिंग। कमआन यू नट-खट गर्ल, कमऑन। हा-हा, उस आलमारी म शराब है। देखू ? हा है। लेकिन बर्फ नही है। न सही। पानी ना है पिओ दत्त, बहुत दिन से तुमने नही पी।

ऐ, कौन है यह, किसन कहा ?

पिओ दत्त, पिओ, पिओ।

अरे मैं पी रहा हू। अधाधुध पी रहा हू। यह क्या ? क्या मेरे सिर म आग लग गई ? इतनी लपटे कैसे उठ रही है। ओफ कितनी गर्मी है। यह कमीज़ अब बर्दाश्त नही होती। मैंने कमीज़ फाड डाली है। रेखा, निकल आओ, उस आलमारी के पीछे क्यो छिपी हो आओ। ओ नॉटी गर्ल। हा-हा-हा-हा। पिओ दत्त पिओ। पी रहा हू। बहुत दिन बाद। माफ करना रेखा, आज तुम्हारे स्वास्थ्य के लिए पी रहा हू। काश कि तुम भी पीती होती। पिओ न ज़रा-सी। शरमाती क्या हो आओ सुनो—और मैं रेखा को आलिंगन करने को दोनो हाथ फैलाकर बढ़ता हू। पर यह तो लैप-स्टैंड है, रेखा नही है। धत्तेरे की। ऐसा भी क्या होगा।

पिओ दत्त, पिओ, और पीओ।

लाओ फिर, मज़ा आ रहा है, बहुत दिन बाद पी रहा हू। बड़ा मीठा ज़हर है। पर ये लाल कुत्ते इतने कहा न आ गए है भागो इतना भाग कुत्ते साले। रेखा, देख रही हो न तुम। वाह हसती हो मगर न। निपट नादा

डार्लिंग ! स्वीट रेखा, मैं दस दिन तक एक रात भी नही सोया। तुम्हारी याद मे तडपता रहा। सुनती हो ! अजी, वहा घूघट निकालकर क्यो खडी हो ? बहुत बढिया साडी पहनी है ! इस साडी मे जच रही हो ! लेकिन जरा उस बक्स को तो खोलो। देखो, क्या है उसमे। वाह प्यारी ! इस कदर खिलखिलाकर हँसने लगी ! ओफ, ये इतनी तोपें कहा छूट रही हैं ! मेरे कान बहरे हो जाएगे। सुनो-सुनो रेखा, मेरी बात सुनो।

और मैं दोनो बाँहे पसारकर कमरे मे दौड रहा हू।

पिओ दत्त, पिओ। अभी बोतल मे काफी शराब है।

ठीक कहते हो दोस्त। लाओ फिर। और बोतल मुह से लगा लेता हू। बोतल फेंक देता हू। पैर लडखडा रहे है। हिचकिया आ रही हैं।

लेकिन तुम हँस क्यो रही हो रेखा ? भगवान् की कसम म-म-मैं न-न-नशे मे नही हू। आओ, आओ, एक किस डार्लिंग, एक किस ! आओ, चली आओ। लेकिन तुम्हारी आखो मे यह क्या चमक रहा है—लाल-लाल ? क्या तुमने भी पी है ? तब तो बहार ही बहार है !

पिओ दत्त, पिओ। आलमारी मे और दूसरी बोतल है।

वाह दोस्त, खूब याद दिलाई ! लाओ फिर, लेकिन पानी खत्म। नीर ही सही। बोतल मुह मे लगाता हू। ओह आग-आग-आग, जला-जला-जला-जला, आ-आ-ग ! आ-आ-ग !

पिओ दत्त, पिओ। अभी बोतल मे बाकी है।

लाओ फिर, रेखा, और पास आ जाओ। अरे, तुम तो लम्बी होती जा रही हो—पर्वत के समान—क-क-कैसे तुम्हे अक मे समेटूगा ?

अरी ओ री चट्टान—पाषाण—पाषाणी आ—आ—अब—म-म मैं आता हू।

दोनो हाथ पसारकर चल रहा हू, और टकरा जाता हू आलमारी से—सिर चकरा गया। तीव्र वेदना—बडी ती-व्र-खून-खून-खून !

# सुनीलदत्त

ठीक है, दिन निकल आया। धूप खिडकियो के पर्दो मे छनकर आ रही है। लेकिन सिर मे बडा दर्द है, ठीक है, याद आया, रात बहुत पी गया और आलमारी से टकरा गया। लेकिन रेखा कहा है? ओह, वह तो रात घर मे थी ही नही! वाह, मैं रात-भर फर्श पर ही शायद पडा रहा। अब उठना चाहिए। वह सामने शृगार-टेबल है, उसके शीशे मे देखू। ओह, बडी विकराल सूरत बन गई। शायद सिर फट गया। कोई बात नहीं। अभी साफ किए डालता हू। कौन द्वार खटखटा रहा है? ठहरो जरा, मैं बाथरूम मे हू, जरा ठहरो! यही बाथरूम है। पहले खून धो डालना चाहिए। बडा भारी जख्म हो गया है। लेकिन भर जाएगा। बडे-बडे जख्म भर जाते है। पर दिल मे जो घाव रेखा कर गई, वह नहीं भरेगा। तो चली ही गई वह, राय के यहा। इतना तो मैंने कभी नही सोचा था। रेखा ऐसी थी भी नही! फिर राय की मुझसे क्या समता! वह बडा बदचलन आदमी है। लेकिन यह हो कैसे गया? सोचा तो करना था रेखा के रग-ढग देखकर कि कही वह बेवफा तो नहीं है, पर जब-जब ये बाते मन मे उठती थी, मैं अपने ही को धिक्कारता था। मै तो समझता था कि कही मेरे ही मे त्रुटि है। इसी से रेखा मेरी होकर भी मुझसे दूर हो गई है। पर रेखा पर-पुरुषगामिनी बन जाएगी, यह तो मै स्वप्न मे भी नही सोच सकता था।

राय पर मैंने विश्वास किया। छि-छि, दुनिया मे अब किसी भी आदमी पर विश्वास नहीं करना चाहिए। राय मेरा पुराना दोस्त है, जिसने

अहसान है मेरे उस पर ! पर खैर, जो होना था वह तो हो ही गया। अब तो रेखा को विसर्जन करना होगा, जैसे देवी की मजी-धजी मूर्ति को गगा मे विसर्जित करना होता है। पर मैं रेखा के बिना जीऊगा कैसे ? नही, नही जी सकता हू। किसी तरह नही। मैं मूर्ख समझता था कि रेखा मेरे बिना नही जी सकती, सो वह तो बात अब खत्म हुई। रेखा चली गई—मोहनभोग छोडकर गोबर खाने के लिए। लेकिन मैं यह कैसे कह सकता हू ! मैं उस पर प्रतिबन्ध लगानेवाला कौन हू ! पर मैं पति तो हू। पति क्या स्त्री पर प्रतिबन्ध नही लगा सकता ? उसे एकनिष्ठ होने को बाधित नही कर सकता ? तब वह पत्नी क्या हुई, वेश्या हुई।

ठहरो, मैं अपने दोषो को देख लू। मैं शराब पीता हू, पीता रहा हू। मेरी हैसियत के बहुत लोग पीते हैं। केवल इसलिए नही कि हमारे मस्तिष्क पर काम का जो भारी भार है, उसे सहन करने की सामर्थ्य हममे बनी रहे, और हम रात आराम से गुजार सके, अपितु इसलिए भी कि यह एक सोशल सभ्यता का प्रतीक भी है। मानता हू कि मैं कभी-कभी बहुत पी जाता हू, पर इससे मैंने किसी पर कोई अनाचार तो नही किया, किसी का कुछ बिगाडा तो नही ? इतनी-सी ही बात मे पत्नी पति से बेवफा हो जाएगी ? दूसरे पुरुष की अकशायिनी बन जाएगी ? तब तो भले घरो की स्त्रियो की कोई मर्यादा ही नही रह सकती। हो सकता है, शराब पीना एक अनैतिक काम हो, पर किसी विवाहिता पत्नी और माता का परपुरुष की अकशायिनी होना क्या है ? उसे मैं कोरा अनैतिक काम नही कह सकता। वह एक भयानक अपराध है और उसका दण्ड मृत्यु है। तब क्या मैं रेखा को मार डालू ? रेखा को ? जिसे मैंने प्राणो से भी बढकर प्यार किया, जिसके लिए मैं पागल बन गया, जिसके बिना मुझे न दिन मे चैन न रात को नीद, जिसके नरम-गरम आलिगन की स्मृति मे प्राण उल्लास से भर जाते है, जिसकी मधुर वाणी और प्यार-भरी चितवन प्राणो मे नवजीवन फूकती रही है, उसे मैं कैसे मार डाल सकता हू ?

तब अपने ही को क्यो न खत्म कर दू ? आजकल तो मरने मे जरा-सा

भी कष्ट नही होता। लमहे-भर मे प्राणपखेरू उड जाते है। यही शायद ठीक होगा। इससे रेखा के मार्ग का रोडा हट जाएगा। उसका मार्ग प्रशस्त हो जाएगा। वह खुशी से राय के साथ रह सकेगी और मेरा भी कष्ट दूर हो जायगा। मैं रेखा के बिना नही रह सकता। क्या कहू, देखो, देखो, कलेजे मे दर्द उठा। आह, आह, कौन, कौन यह मेरी पसलिया मेरे सीने से खीच रहा है? ओह, अरे भाई ठहरो। इतने जालिम न बनो, म अभी जिन्दा हू। जिन्दा आदमी की पसली उसके सीने मे भला इस बेरहमी से निकाली जाती है! ओफ, ओफ, अजी, बहुत दर्द है, बहुत—बहुत!

इसकी एक दवा है। अभी यह दर्द काफूर हो जाएगा। यह उस दराज मे दवा रखी है। निकालकर देखू? यही है, यही, जरा-सी काली-काली चीज है, मगर बडे काम की है। आज तक मैंने कभी इसे इस्तेमाल ही नही किया। खिलौना बनी पडी रही इसी दराज मे। आज शायद काम आ सकेगी? गोलिया कहा है। ये रही, भर लेता हू। पूरी बारह गोलिया मैंने भर ली हैं, पर मेरा ख्याल है मेरे लिए एक ही काफी है! मुह मे लगाकर घोडा दबा दूगा, बस सब काम अपने-आप ही हो जाएगा। किन्तु चाहे भी जो हो, रेखा बेवफा भले ही हो गई हो, पर वह मेरे लिए रोग बिना तो नही रहेगी। मेरे-जैसा दिलदार आदमी उसे मिलेगा कहा? —हा-हा, मै अपने कसूरो पर विचार कर रहा था। मैं अपनी शराब पीने की आदत की बाबत कह रहा था जिसने रेखा को मुझसे पृथक् कर दिया।

पर इतनी ही तो बात नही है। उन किताबो ने मुझे पढाया था कि औरत अकेली नही रह सकती। मै कुबूल करता हू कि मैं अपने कामो मे उलझा रहता था। मेरा काम भी तो ज़िम्मेदारी का था। रेखा को प्रतीक्षा करनी पडती थी, तो क्या हुआ! क्या मनुष्य का जीवन भोग-विलास ही के लिए है? नही-नही, मनुष्य के बहुत-से ज़िम्मेदारी के महत्त्वपूर्ण काम है जिनका सम्बन्ध समाज के जीवन से है। भोग-विलास जीवन का उद्देश्य नही है, जीवन को कायम रखने का साधन है। इतनी-सी बात रेखा ने नही समझा! नही-नही, कसूर मेरा नही है रेखा का है। [illegible]

जान क्यो दू ?

तब फिर क्या करू ? रिवाल्वर तो मेरा तैयार है, इसमे बारह गोलिया भरी हुई हैं, अब तो बस ज़रा-से साहस की आवश्यकता है। नहीं, नही, निर्णय करने की भी आवश्यकता है। यह ठीक है कि मैं बेकसूर हू, पर यह न्याय-फैसला कहा हो रहा है। असल बात तो यह है कि मैं रेखा के खिलाफ कोई सख्त कदम नही उठा सकता, और मैं रेखा के बिना जी भी नहीं सकता। रेखा की बदनामी कानो से सुन भी नही सकता। परपुरुष के अक मे उसे देख भी नही सकता। इसलिए मृत्यु-दण्ड नही, दवा है। दवा के तौर पर मुझे एक गोली खा ही लेनी चाहिए।

हा-हा, मुह मे नाल डालना ठीक होगा। या कनपटी पर ही निशाना साधू ? कही ऐसा न हो निशाना चूक जाए, और मैं केवल ज़ख्मी ही होकर रह जाऊ, मरू नही ! मुह मे ठीक है, हा इसी तरह—यहीं, बस।

कौन ? कौन ? कौन द्वार खटखटा रहा है ? अरे, यह तो रेखा का स्वर है !

"खोलो-खोलो, दरवाज़ा बन्द करके वहा क्या कर रहे हो ?"

" अरे, तुम हो रेखा ! अच्छा-अच्छा ! ठहरो, खोलता हू द्वार ! ज़रा ठहरो, ज़रा ठहरो, ज़रा "

लेकिन ! यह तो एक सेकण्ड का ही काम रह गया। खत्म ही क्यो न कर दू !

"खोलो भई, दरवाज़ा खोलो।"

"खोलता हू, खोलता हू।"

चलो एक बार फिर रेखा को आख भरकर देख लू। फिर यह क्षण तो चाहे जब आ जाएगा। अभी इसे दराज़ मे रख दू। कोई बात नहीं, कोई बात नहीं। रिवाल्वर दराज़ मे रख देता हू। दरवाजा खोल देता हू।

# सुनीलदत्त

"दरवाज़ा बन्द करके क्या कर रहे थे ?"

"ही-ही-ही, आराम कर रहा था। आराम ! समझती हो न, आराम !"

"लेकिन यह चोट कैसी है ? सारा सिर खून से भर गया है ?"

"खून से ? ठीक कहती हो तुम रेखा। मेरे जिस्म में खून बहुत है।"

और रेखा ने यत्न से खून धोया है, ज़ख्म साफ किया है, पट्टी बांधी है। वही नर्म-गर्म हथेलियां हैं। वही चम्पे की कली के समान उंगलियां हैं, वही लालसा से फूले हुए लाल-लाल होठ हैं। बड़ी तत्परता से, ममता से पट्टी बांध रही है। भला इस प्रेम की पुतली पर कैसे गोली चलाई जा सकती है ! कैसे इसे मारा जा सकता है ! कितने भोलेपन से बात करती है ?

"चोट लगी कैसे ?"

"गिर गया मैं, अलमारी से टकरा गया।"

वह पट्टी बांध रही है, और पूछ रही है—

"कैसे टकरा गए ?"

"ही-ही, नशे के झोंक में भले समझता तुम हो। आखिरकार मैं ने गिरा, सिर टकरा गया।"

"इतनी क्यों पीते हो तुम ?"

"बेशक बुरी बात है ! है न ?"

"खैर, अब ज़रा हाथ-मुंह धो लो। चाय तैयार है।"

"तो मैं भी तैयार हूं, बस चटनी बनाना बाकी है। ही—

ही—ही !"

"ये कैसी बाते कर रहे हो ? क्या हो गया है तुम्हे ? तुम्हारी आखें कैसी हो रही है ?"

"आखे ? क्या इनमे से आग के शोले निकल रहे है ?"

"खैर, चाय यही ले आऊ ?"

"ले आओ, ले आओ। अथवा यही बैठी रहो। इसी तरह पट्टी बाधती रहो।"

"पट्टी तो बध चुकी।"

"अफसोस ! एक ही जख्म था। और भी कही "

"मैं चाय लाती हू।"

और रेखा ने चाय का प्याला मेरे हाथ मे थमा दिया। मैंने समझा शराब है। मैंने कहा, "तुमने तो कहा था कि मत पिया करो।"

"क्या ?"

"शराब।"

"यह क्या शराब है ?"

"शराब नही है ?"

"चाय है, चाय।"

"चाह है, चाह है !" मेरी हँसी फूट निकली। और चाय का प्याला मेरे हाथ से छूट गया।

रेखा घबरा गई है। शायद उसकी आखो आसू उमड आए। उसने कहा, "तुम्हारी तबीयत खराब है। क्या डाक्टर को बुलाऊ ?"

"डाक्टर को ? लेकिन तुम क्यो ? वे तो स्वय ही बुला लेगे। पर अभी हुआ ही क्या है ?"

"तुम कैसी बाते कर रहे हो ? चलो, आराम करो।"

"आराम तो म कर चुका हू।"

"चाय भी तो नही पी !"

"लाओ दो—पी लू।"

रेखा ने चाय का दूसरा प्याला दिया। इसे मैंने कडवी दवा की भाति एक ही सास मे पी लिया। प्याला खाली करके कहा, "और दो!" और मेरी हँसी बिखर गई है। रेखा का रग फक हो गया है। वह सन्देह भरी नजर मे मेरी ओर देखने लगी है। स्पष्ट ही उसकी आखो मे भय भरा हुआ है। वह शायद काप रही है। मैंने कहा, "तुम रेखा, मुझसे डरती हो?",

"मैं तुमसे कुछ बातें करना चाहती हू।"

"खूब बाते करो। लेकिन और पास खिसक आओ। डरो मत।"

"सचमुच तुम मुझे डरा रहे हो।"

अब फिर मेरी हँसी बिखर गई। मैंने कहा

"मेरा हाथ खाली है, फिर क्यो डरती हो? वह चीज तो दगान म ही खैर उन बातो को जाने दो। लेकिन बात कहो।"

"मैं मैं बेवफा हू।"

"बस?"

"अब हम एकसाथ नही रह सकते।"

"ठीक है। और?"

"तुम मेरे साथ कैसा बर्ताव करोगे यह बता दो। म सब-कुछ बर्दाश्त कर लूगी।"

"बहुत गम्भीर बात है। पर मैं कहता हू—कहता हू, तुम्हे मुझसे डरने की जरूरत नही है।"

'तो मैं सब साफ-साफ बाते कह दू।"

"कह दो।"

'मैं राय को प्यार करती हू।"

'मैं समझ गया। ठीक है। लेकिन इतने जोर से मत बोलो डार्लिंग। कोई सुन लेगा।"

तुम मुझे तलाक दे दो। म उनसे शादी कर लूगी।'

'शादी की बात बहुत बढिया है! बाजे बजेगा, शहनाई बजेगी—मजा रहेगा। तो फिर?"

"तुम उत्तेजित होगे तो मैं कुछ न कर सकूगी।"

"यह भी ठीक है। लेकिन मैं मैं सोना चाहता हू।"

"पर अभी मेरी बात पूरी नही हुई।"

"तो क्या हर्ज है, अभी जिन्दगी भी तो पूरी नही हुई।" और मैं लड-खडाते पैरो से चलकर शयनागार मे पड गया हू। खूब सोया हू। और अभी आख खुली है। तबीयत तो मेरी ठीक है, ऐसा प्रतीत होता है, रेखा डर गई है। पर उसे मुझसे डरने की क्या जरूरत है? और वह बात ही मुझसे क्या करेगी? अब बातचीत तो अपने-आप ही हो चुकी है। अब तो, अब तो बस मुझे आखिरी फैसला करना है। लेकिन क्या कारण है कि मैंने राय के सम्बन्ध मे अभी तक कुछ विचार नही किया? मुझे देखना होगा कि वह कहा तक अपराधी है। क्या राय ने रेखा को कुमार्ग पर नही डाला! क्या रेखा स्वय चलकर राय के पास गई? परन्तु इन बातो की मीमासा करने का अब समय कहा है! किन्तु अब मुझे बहुत-सी पुरानी बातें याद आ रही हैं, और कुछ बातो को तब नही समझ रहा था, अब समझ रहा हू। राय बडा चालाक और धूर्त है। मेरी रेखा को उसने छीना है। वह दण्ड का पात्र है। यदि मैं उसे गोली से उडा दू, तब तो दण्ड रेखा को ही मिलेगा। वह निराधार रह जाएगी। मेरी फासी पडने के बाद उसका वह सहारा छिन जाएगा जिसके लिए उसने अपना सतीत्व भग किया।

मुझे सब बातो पर पूरे ध्यान से विचार करना पडेगा। रेखा ने यह तो कह ही दिया कि वह राय को प्यार करती है। न करती तो भी मैं जान गया था कि वह मुझसे विच्छेद करके उससे शादी करने को बेचैन है।

मैं उनके मुह से यह बात सुन सका। अच्छा ही हुआ कि मैंने उस पर आक्रमण नहीं किया, यहा चला आया। ईर्ष्या-द्वेष से क्या लाभ है? मैं एक बार राय को पूछ लू कि वह रेखा से शादी करने को तैयार भी है!

यदि है तो मैं वहीं अपने को गोली मारकर खत्म कर दूगा और रेखा और उसका रास्ता साफ कर दूगा, पर यदि उसने इन्कार किया तो उसी को मार डालूगा।

# रेखा

सोकर उठने के वाद वे शान्त और स्वाभाविक थे, फिर भी उनके नेत्रो मे न जाने कैसा भाव था ! मैं सुवह ही उनके रंग-ढंग से ऐसी डर गई थी कि अब कुछ कहने का मुझमे साहस ही नही रहा। अब वे शान्त, खुश थे। उन्होने मेरे साथ चाय पी, प्रद्युम्न को गोद मे बैठाकर प्यार किया। उनकी यह ममता, सहनशीलता और प्रेम देखकर तो मेरा रोना मुह को आने लगा। हाय, कैसे कष्ट की वात है कि मुझे इस पुरुष को— पति को छोडकर जाना पड रहा है ! पर मै रह भी कैसे सकती हूं ? उनकी पत्नी मैं रही कहा ?

मैं अपने मन का चोर भी आपको वता दू। राय से मै शंकित हूं। वे व्याह को क्यो वार-वार टालते है ? जो हो, मै वापस लौट सकती नही— यहा तक पहुचकर। आखिर मैंने यह वात उनसे कह दी। कट सका न [illegible] यह जवान ? वे सुनकर कुछ अजव-सी चेष्टा करने लगे। क्या वे पहले से ही सव वाते जानते थे ? सुवह तो उनकी प्रत्येक चेष्टा उन्मत्तो जैसी थी।

जव तक चाय पीते रहे, प्रद्युम्न की ओर वडे ध्यान से देखते रहे। क्या देख रहे थे वे भला इस तरह ? शायद वे कुछ पूछना चाहते थे। कोई गम्भीर मर्मभेदी वात। परन्तु पूछ न सके, केवल मुस्कराकर रह गए। शायद उन्हे इस वात का इत्मीनान नही हुआ कि मै सच-सच सब बातों का जवाव दूगी। फिर अकस्मात् ही उन्होने कोई पिक्चर देखने का प्रस्ताव किया। मै नही न कह सकी। हम पिक्चर देखने गये। रास्ते-भर वे हंस-हंसकर वाते करते रहे, प्रद्युम्न की वातो का उत्तर देते रहे। [illegible]

उसे बहुत-से खिलौने दिलवाए। रुपये वे इस तरह फेक रहे थे जैसे रद्दी कागज़ के टुकडे हो। मैं हैरान थी। मुझसे उन्होने कुछ खरीदने की बहुत जिद की। पर मैं कैसे कोई चीज़ अब उनकी ले सकती हू, जब मैंने स्वय अपने को बेवफा स्वीकार कर लिया है? फिर, रात मैंने उनके सूटकेस को देख लिया था। कितनी चीज़े वे मेरे लिए खरीदकर लाए थे!

क्या ही अच्छा हो, भगवान् ये दिन दु स्वप्न की भाति गायब कर दे, और हम फिर पुराने दाम्पत्य-जीवन मे लौट आए! बहुत आग्रह करके उन्होने एक हीरे की अगूठी खरीदकर हँसते-हँसते मेरी उगली मे डाल दी। फिर चलते-चलते घर-गिरस्ती की बहुत बाते की। बाते कुछ अजब ढग की थी।—रुपये-पैसे, बैक-एकाउण्ट, इन्श्योरेन्स आदि की बाते। भला क्या काम है इन सब बातो का! मेरा मन मोम हो गया है। एक बार ये कह दे कि रेखा, तू मेरी है, तो मैं निहाल हो जाऊ। मन होता है कि मैं उनके पैरो पर गिरकर क्षमा माग लू। अपने सब अपराध उन्हे बता दू, और जो दड दे, स्वीकार कर लू।

मैंने मन को भीतर से टटोलकर देख लिया है, अच्छी तरह—प्रेम जिसका नाम है वह राय के लिए जैसे अन्तस्तल मे नही है। और राय भी रम्म पीटते है, वासना-पूर्ति करते हैं। सबसे बढकर यह कि शादी को राज़ी नहीं होते। दत्त को तो जैसे मैं प्यार अब भी करती हू। मैं अब तक अपने ही मन को धोखा देती रही, पर अब भीतर से एक आवेग उमड रहा है और मेरा मन दत्त के चरण चूमने को अधीर हो रहा है।

भाड मे जाए राय, आग लग जाए मेरी वासना मे। मेरा शरीर दूषित हो गया, पर मेरा हृदय शुद्ध है। दत्त यदि मुझे क्षमा करके अपना ले, तो मैं उनकी एकनिष्ठ दासी बनकर रहूगी।

यह सिनेमा हाउस आ गया। दत्त टिकट खरीद रहे है। शो अब आरभ होने ही वाला है। सवा छ बज रहे है। प्रद्युम्न इन बडे पोस्टरो को ध्यान से देख रहा है। वे टिकट ले आए है और हम बाक्स पर जा बैठे है। दत्त मेरी बगल मे है, ऐसा प्रतीत होता है, इस समय वे बहुत भावुक हो

उठे हैं। उन्होने मेरा हाथ पकड लिया है। उनकी उगलिया काप रही हैं। पर उनका यह सुखद स्पर्श मुझे अच्छा लग रहा है। पर दत्त चुप हैं, कुछ भी बोलते नही है। पर वे पिक्चर भी ध्यान से नही देख रहे है। कभी-कभी उनकी उगलियो का कपन बढ जाता है। पर उनकी नज़र पिक्चर पर ही है। अभी एक ही रील खत्म हुई है कि वे उठ खडे हुए। उन्होने कहा, "रेखा, एक वहुत जरूरी काम याद आ गया, मैं अभी आता हू। तुम वैठो।" और वे विना मेरी ओर देखे लपकते हुए चले गए। मैंने रोकना चाहा पर वे नही रुके। "अभी आता हू, अभी आता हू," कहते हुए चले गए।

प्रद्युम्न का मन तो पिक्चर मे लग रहा है। पर मेरा मन दत्त मे है। कहा चले गए वे ? ऐसी कौन-सी वात याद आ गई ? वडे आश्चर्य की वात है यह। पिक्चर खत्म हो रही है, पर दत्त का पता नही है। मेरी वेचैनी बढ रही है। मन मे यह कैसी घवराहट उठ रही है ! क्या वात है ? कहा चले गए वे ?

पिक्चर खत्म हो गई। दत्त नही आए। शोफर प्रतीक्षा कर रहा था। मैने पूछा, "साहव आए !"

उसने शैतानी से पूछा, "कौन साहव ? दत्त साहव या राय ?" गुस्से से मेरी आखे जल उठी। ये कमीने नौकर भी मेरा उपहास करते हैं ! पर मैंने शान्त होकर कहा, "दत्त साहव को पूछती हू ! देखता नही अन्धा है ?" पर शोफर ने आहिस्ता से जवाव दिया, "दत्त साहव हुक्म दे गए है कि मै टैक्सी लेकर आपको घर ले जाऊ। कार वे ले गए है।"

"लेकिन कहा गए हैं दत्त इस तरह अकस्मात् वहाना वनाकर ? चलो जल्दी। एक टैक्सी ले आओ।" शोफर टैक्सी लाता है और मै टैक्सी मे वैठ जाती हू।

घर भी वे नही पहुचे है। मेरा मन भय से भर उठा है, और मेरा कलेजा मुह को आने लगा है। न जाने क्या होने वाला है। लेकिन वे गए कहा ? एक-एक क्षण मुझे पहाड लग रहा है।

दस वज रहे है। दत्त नही आए। [illegible] प्रतीक्षा मे [illegible]।

ऐसी प्रतीक्षा मैंने जीवन मे कभी नही की थी। मेरे प्राण व्याकुल हो रहे हैं। जीवन सूना हो रहा है। क्या वात है यह, मैं नही जानती हू। धरती तत्ता तवा लग रही है, पैरो के तलुए जले जाते हैं। कभी घर मे, कभी वराडे मे, कभी लान मे आकर देख रही हू। कहा हैं दत्त ? उनके विना सारी दुनिया आज सूनी नजर आ रही है। चाद गायव है। तारे सव झड चुके। चिराग वुझ गए। अन्धकार है—वाहर दुनिया मे भी, और भीतर आत्मा मे भी। खून की वूदें जैसे आसू वन रही हैं, आसू वनकर आखो मे उमडी चली आ रही हैं। आज सारा ही खून आसू वन जाएगा, वह जाएगा। फिर मैं जीऊगी कैसे ? आओ-आओ, आओ।

ग्यारह वज गए। प्रद्युम्न रोते-रोते सो गया, विना खाए-पिए। मैंने उसकी ओर देखा भी नही। ऐसी निष्ठुर वन गई ! मैं, मा अव कहा हू ? जव पत्नी ही नही रही, तो मा कहा रही ? अजी, मैं तो अव नारी भी नही रह गई।

यह मेरा दिल क्यो धडक रहा है ? क्या मैं मरनेवाली हू या प्रलय होनेवाली है ? ओफ, कितनी अंधेरी रात है ! कितना डर लग रहा है मुझे ! क्यो नही आए अभी तक !

साढे ग्यारह वज रहे हैं। ऐ ! कौन ? हार्न अपनी ही कार का है ! वे आ रहे हैं ! मैं निकलकर सीढियो पर आ खडी होती हू। पर यह क्या! भारी-भारी कदम उठाते मतवाले हाथी की चाल चलते वे चले आ रहे हैं। कार से निकलकर मेरी तरफ देखा भी नही। अपने शयनागार मे चले गए।

और मैं दौड रही हू। "अजी, सुनो तो। कहा चले गए थे ? सुनो, सुनो। मैं कव से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही हू !

'सुनो क्या ?" यह क्या ? वे आकर आरामकुर्सी पर गिर गए हैं। हा, गिर गए हैं। इसे वैठना नही कह सकते। रिवाल्वर जेव से निकाल कर मेज पर फेंक दिया है, मुझे देखकर हँस रहे हैं।

मैं एकदम उनके निकट चली गई हू। मेरी हड्डिया तक काप रही हैं। 'क्या कर डाला है तुमने ? कहा गए थे मैं मैं "

"  मैंने राय को मार डाला है। लेकिन सिर्फ तीन गोलिया खर्च हुई हैं। अभी नौ गोलिया इसमे और है। उठा लो इसे और मेरी कनपटी मे नाल छुआकर घोडा दवा दो। जोर लगाना नही पडेगा। जरा-से झटके से काम हो जाएगा। हा, तुम्हारे ही हाथ से यह काम होना अच्छा है। लेकिन पहले इन लाल-लाल होठो का एक चुम्वन दे दो। यद्यपि ये जूठे हो चुके, वेवफा हो चुके, अपवित्र हो चुके, परन्तु मेरे लिए यह पवित्र प्रेम का प्रसाद है। अपने लिए मत डरो। मैंने अपनी सब सम्पत्ति, वीमा और वैक-एकाउण्ट तुम्हारे नाम प्रथम ही कर दिया है। आओ, और पास आओ। मेरे अक मे वैठ जाओ। उसी भाति जिस भाति व्याह के बाद वैठती थी। अपनी भुजवल्लरी मेरे कठ मे डाल दो और एक प्यार दे दो, वस एक प्यार। प्यारी रेखा, डार्लिंग, स्वीट ! आओ-आओ। हा-हा, एक बात वता दो, प्रद्युम्न खैर जाने भी दो। अव एक क्षण-भर के लिए यह वात जानकर भी क्या करूगा ?

"आओ-आओ मेरी प्यारी रेखा। इतनी निकट आ जाओ कि मेरा हृदय अपनी अतिम धडकन तुम्हारे हृदय की धडकन से मिला दे।"

लेकिन-लेकिन अरे, यह तो वेहोश हो गई। धडाम से फर्श पर गिर गई। सिर फट गया इसका। किसे पुकारू ? किसे और !

# सुनीलदत्त

सब कुछ निश्चय करके ही मैं घर से निकला था। सब बातों पर आगे-पीछे सोचकर मैंने अपना कर्तव्य निश्चय कर लिया था। मैं पागल नहीं था, सब बातों को ठीक-ठीक समझता था। रेखा पर मैं हाथ नहीं उठा सकता था। बहुत चाहा कि उसे भूल जाऊ, उसका प्रेम मेरे हृदय से निकल जाए, पर इसमे मुझे सफलता नहीं मिली। मेरे जैसे व्यक्ति के लिए यह बहुत ही विचित्र बात है कि मैं एक औरत के लिए अपने समूचे जीवन की बलि देने को तैयार हो गया। पर क्या किया जा सकता था। मैंने समझदारी और धीरज से काम लिया, और अपने को परिस्थितियो के अनुकूल बनाने की भरसक चेष्टा की। मैंने अपने मन के सहज विरोध को काबू मे रखने के लिए हद दर्जे तक मन पर नियन्त्रण रखा। स्वीकार करता हू, कुछ ऐसे लोग हुआ करते है जिन्हे ज्ञान-बुद्धि का इतना प्रबल आकर्षण होता है कि वे सब असुविधाओ को बर्दाश्त कर लेते है। परन्तु ये सब बाते ऐसी हैं जो सामाजिक दृष्टि से दूसरो से छिपानी पड़ी। आप शायद यह विश्वास न करेंगे कि मुझे कुछ बाते अपने-आपसे भी छिपानी पड़ी या मुझे अपने-आपको धोखे मे रखना पड़ा—क्योंकि उन बातो को मै अपने लिए ठीक नहीं मानता था। मै स्वीकार करता हू कि जीवन के मानसिक पहलुओ मे मेरी कभी दिलचस्पी नहीं रही, और मन के मनोवैज्ञानिक ढाचे से मै अपरिचित ही रहा। मन मे वस्तु की अनुभूति, विचार और इच्छा के प्रक्रम होते है। उसमे अचेतन इच्छाए और अचेतन विचार भी होते है। उनमे सहज-से काम-आवेग होते है और ये काम-आवेग मनुष्य के मन मे कला-संस्कृति और जीवन मे

उत्साह एव आनन्द प्रदान करते हैं। इन आवेगो को वश मे करना कठिन काम है। जो आदमी सभ्यता के निर्माण मे भाग ले रहा हो उसमे यदि कामआवेगो का विरोध उठ खडा हो तो वह उस व्यक्ति की क्रियाशक्ति को दूसरी ओर मोड देगा—यह एक वहुत वडा खतरा है। काम-आवेग या यौन-जीवन का महत्त्व सवके सामने खोलकर नही रखा जा सकता। यह सामाजिक हितो के विरुद्ध है। इसी से इस मामले मे सयम का सहारा लेना पडता है। पर सयम की भी तो अन्तत सीमा है। काम-आवेग और सयम की सीमाए जहा टकराती हैं वहा कुछ गलतिया होती है और वे कभी-कभी ऐसी भारी हो उठती हैं कि मनुष्य का सारा जीवन [illegible] अस्त-व्यस्त हो उठता है अथवा मनुष्य आत्मघात या खून भी कर बैठता है।

देखिए, खून के नाम से आप डरिए मत। इस [illegible] मे [illegible] हू कि मैं खून करने की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि पर विचार करने [illegible]। मैं कोई मूढ, क्रोधी और ईर्ष्यालु पति नही हू। एक सहृदय और [illegible], अपनी सव जिम्मेदारियो से परिचित पति हू। तो सुनिए—अव मेरी [illegible] शायद फिर आप न सुन सकें कुछ ऐसी अवस्थाए आती है, जव [illegible] वाते वहुत हलकी दिखाई देती हैं। पर उनके खून से हम वडी-वडी [illegible] के निर्णय पर पहुचते है। उस समय हम उनकी ओर देखते भी नही। हम यह नही सोचते कि ये मामूली वाते कार्य-कारण के नियम से वधी हुई है और वे जिस रूप मे घटित हुई हैं उससे दूसरे रूप मे भी घटित हो सकती है, जिनमे जीवन-मरण का सकट आ उपस्थित होता है।

यौन जीवन का अर्थ है—अनुचित, अर्थात् जिसकी चर्चा नही [illegible] चाहिए। परन्तु सव काम-वृत्तिया पतन का चिह्न है यह मै नही [illegible]। सभोग के आलम्वन से अनियमित सम्बन्ध हम आदिम जाति से [illegible] की सभ्यता तक मे वैसा ही देखते है। आदिम काल से [illegible] यौन-प्रवृत्तियो के समूह मे—सतुष्टि और अस्वीकृति के वीच [illegible] रहा है। प्रकृत यौन तृप्ति की कुण्ठा से मानव-जीवन का [illegible] है। काम-क्षुधा एक भीषण दुख है। यह वह [illegible] है कि [illegible]

# सुनीलदत्त

सब कुछ निश्चय करके ही मैं घर से निकला था। सब बातो पर आगे-पीछे सोचकर मैंने अपना कर्तव्य निश्चय कर लिया था। मैं पागल नही था, सब बातो को ठीक-ठीक समझता था। रेखा पर मैं हाथ नही उठा सकता था। बहुत चाहा कि उसे भूल जाऊ, उसका प्रेम मेरे हृदय से निकल जाए, पर इसमे मुझे सफलता नही मिली। मेरे जैसे व्यक्ति के लिए यह बहुत ही विचित्र बात है कि मैं एक औरत के लिए अपने समूचे जीवन की बलि देने को तैयार हो गया। पर क्या किया जा सकता था। मैंने समझ-दारी और धीरज से काम लिया, और अपने को परिस्थितियो के अनुकूल बनाने की भरसक चेष्टा की। मैंने अपने मन के सहज विरोध को काबू मे रखने के लिए हद दर्जे तक मन पर नियन्त्रण रखा। स्वीकार करता हू, कुछ ऐसे लोग हुआ करते हैं जिन्हे ज्ञान-बुद्धि का इतना प्रबल आकर्षण होता है कि वे सब असुविधाओ को बर्दाश्त कर लेते हैं। परन्तु ये सब बातें ऐसी हैं जो सामाजिक दृष्टि से दूसरो से छिपानी पडी। आप शायद यह विश्वास न करेंगे कि मुझे कुछ बातें अपने-आपसे भी छिपानी पडी या मुझे अपने-आपको धोखे मे रखना पडा—क्योकि उन बातो को मैं अपने लिए ठीक नही मानता था। मैं स्वीकार करता हू कि जीवन के मानसिक पहलुओ मे मेरी कभी दिलचस्पी नही रही, और मन के मनोवैज्ञानिक ढाचे से मैं अपरिचित ही रहा। मन मे वस्तु की अनुभूति, विचार और इच्छा के प्रक्रम होते हैं। उनमे अचेतन इच्छाए और अचेतन विचार भी होते है। उनमे बहुत-से काम-आवेग होते हैं और ये काम-आवेग मनुष्य के मन मे कला-सस्कृति और जीवन मे

उत्साह एव आनन्द प्रदान करते है। इन आवेगो को वश म करना ...
काम है। जो आदमी सभ्यता के निर्माण म भाग ले रहा हो उसम ...
कामआवेगो का विरोध उठ खडा हो तो वह उस व्यक्ति की क्रियाशक्ति ...
दूसरी ओर मोड देगा—यह एक बहुत बडा खतरा है। काम-आवेग ...
यौन-जीवन का महत्त्व सबके सामने खोलकर नही रखा जा सकता। ...
सामाजिक हितो के विरुद्ध है। इसी से इस मामले म सयम का सहारा ...
लेना पडता है। पर सयम की भी तो अन्तत सीमा है। काम आवेग और ...
सयम की सीमाए जहा टकराती है वहा कुछ गलतिया होती है और ...
वे कभी-कभी ऐसी भारी हो उठती है कि मनुष्य का सारा जीवन ...
अस्त-व्यस्त हो उठता है अथवा मनुष्य आत्मघात या खून भी कर ...

देखिए, खून के नाम से आप डरिए मत। ...
हू कि मै खून करने की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि पर विचार ...
मै कोई मूढ, क्रोधी और ईर्ष्यालु पति नही हू। एक सहृदय और ...
अपनी सब जिम्मेदारियो से परिचित पति हू। तो सुनिए ...
शायद फिर आप न सुन सके कुछ ऐसी अवस्थाए आती है ...
बाते बहुत हलकी दिखाई देती है। पर उनके खून न हम बडी ...
के निर्णय पर पहुचते है। उस समय हम उनकी ओर ...
यह नही सोचते कि य मामूली बाते काय-कारण के नियम ...
और वे जिस रूप मे घटित हुई है उसस दूसर रूप म भी ...
है, जिनसे जीवन-मरण का सकट आ उपस्थित होता है।

यौन जीवन का अथ है—अनुचित अर्थात् ...
चाहिए। परन्तु सब काम-वृत्तिया पतन का चिह्न है ...
सभाग के आलम्बन से अनियमित सम्बन्ध हम आदम ...
की सभ्यता तक मे वैसा ही देखत है। ...
यौन-प्रवृत्तियो के समूह मे —सतुष्टि और ...
... है। प्रकृत यौन तृप्ति की कुण्ठा स मानव जीवन ...
काम-क्षुधा एव भीपण भूख है। यह ...

यौन वृत्ति उसी प्रकार अपनी अभिव्यक्ति करती है जैसे पोषण की निसर्ग-वृत्ति भूख के द्वारा अपनी अभिव्यक्ति करती है, यौन उत्तेजन और सतुष्टि के बीच बहुत-सी बातें है। वे शारीरिक भी है, और मानसिक भी, सामाजिक भी है और व्यक्तिगत भी। उन बातो मे जीवन-सघर्ष की पराकाष्ठा है। खासकर तब जब अनुराग-भावना का घृणा मे परिवर्तन हो जाए। प्रेम और घृणा का आलम्बन जीवन का गम्भीर खतरा बन सकता है। ऐसी अवस्था मे रागात्मक आवेग चिन्ता मे परिवर्तित हो जाते हैं जो दमन के प्रक्रम का नियत परिणाम हैं।

यही राय वाला मामला ले लें। ऐसे दुराचारी को मौत के घाट उतारना उचित है जिसने गृहस्थ-धर्म की पवित्रता को भग किया है। कानून इस सम्बन्ध मे कोई सहायता नही करता। कानून कहता है, कोई हर्ज नही, तुम्हारी स्त्री तुम्हारे साथ रहना नही चाहती। तुमसे प्रेम नही करती तो कोई बात नही है। उसे वहा चली जाने दो जिससे वह प्रेम करती है, और तुम कोई भी दूसरे आदमी की पत्नी ढ्ढ लो, जो तुम्हे प्यार करे। परन्तु मैं इस कानून को कैसे स्वीकार कर सकता हू! यह पत्नियो की अदल-बदल बिलकुल वाहियात वस्तु है। फिर केवल प्यार ही तो पति-पत्नी के बीच का माध्यम नही। पारिवारिक और बहुत-से बन्धन हैं। नही, ऐसा व्यक्ति दुनिया मे जिन्दा नही रहना चाहिए जो दूसरो की पत्नियो को हरण करता है, गृहस्थ की पवित्रता और निष्ठा को नष्ट करता है। मैं उसे आज मार डालूगा। परन्तु वह मेरा मित्र था। उसका प्यार याद आता है। बीते दिन याद आते है। जब हम दोनो खूब हसते थे, खाते-पीते थे, मौज-मजा करते थे।

तो न सही। मैं उससे कहूगा कि वह रेखा से ब्याह कर ले और अपने को गोली मारकर आत्महत्या कर लूगा। बस, बखेडा खत्म। मेरी भी सब तकलीफें खत्म और रेखा की बाधा दूर।

ओह, यह मेरे सिर मे कैसे तेज चाकू चल रहे है! लेकिन अब मैं बेहोश होना नही चाहता। रिवाल्वर ठीक है। गोलिया भरी हुई है। परन्तु

आवश्यक है कि शरीर और मन मे पूरी स्फूर्ति हो। मैंने डटकर स्नान किया है, कपडे बदले हैं। ठीक-ठीक शरीर-विन्यास किया है। और मैं हंसता हुआ रेखा के साथ चाय पी रहा हू पिक्चर देखने का मैंने ही प्रस्ताव किया है।

रेखा भीता-चकिता हरिणी की भाति चौकन्नी है। उसकी मनोदशा देखकर दु ख होता है। भला मेरे रहते रेखा की यह हालत। परन्तु अफसोस, आज तो वह मुझी से डरी हुई है। पति—जिसके अक मे स्त्री ससार के सभी भयो से निर्भय और सभी आनन्दो से भरपूर रहती है [illegible] रेखा उसी पति से भयभीत है। न मैं उसे ढाढस दे सकता हू—और न वही मुझ से अभय माग सकती है। उसकी दशा तो उस पशु के समान है [illegible] हो गया हो कि अभी उसका वध होनेवाला है। [illegible] उसकी दृष्टि। देखी नही जाती। कलेजा मुह को आ रहा है।

शायद उसके मन मे पश्चात्ताप का उदय हुआ है। पर [illegible] विगडा कुछ भी नही है, यदि वह पश्चात्ताप करे, यदि [illegible] अमल-धवल शतधौत कमल के समान उज्ज्वल हो जाए। [illegible] फडक रहे है। उच्छिष्ट—अभागे अधर। वह मुझ पति से भी [illegible] सकोच से बात करती है—बिलकुल जैसे पराई हो।

काश कि फिर वे दिन लौट आते। काश कि आज कोई [illegible] कह दे—अरे दत्त, वह सब तो सपने की बाते थी। यह तेरी [illegible] है—वैसी ही है। इसे अक मे भर। इसका चुम्बन ले। [illegible] बातो मे क्या रखा है।

चाय खतम हो गई है। और हम लोग पिक्चर देखने जा रहे है। [illegible] बहुत खुश है। हा, प्रद्युम्न की बात तो रह जाती है। प्रद्युम्न [illegible] है? क्या मेरा है? कौन जाने। [illegible] तो बेटे भी विश्वसनीय नही रह जाएगे। [illegible] जाएगी। समाज ने, कानून ने स्त्रियो की [illegible] तो। अब तो ससार के सब पुत्र [illegible] प्यार और विश्वास से वचित हो [illegible]

को तथ्यत केवल एक मात्र वही औरत जानती है, जो झूठी हो चुकी, विश्वासघातिनी हो चुकी, बेवफा हो चुकी, पर-पुरुपगामिनी हो चुकी ! कौन पति उस पर पतियाएगा ?

जी चाहता है पूछू रेखा से। शायद सच्चा जवाब दे दे ! शायद प्रद्युम्न मेरा ही पुत्र हो, मैं ही इसका पिता होऊ ! अब तक तो मैं अपने ही को पिता समझता रहा था। पर यह मैं कहा जानता था कि रेखा बेवफा है, पर-पुरुप-गामिनी है। अब तो जैसे कोई जजीरो से जकडकर मेरे मन को बाध रहा है। प्रद्युम्न की तरफ बढने ही नही देता। पर बेचारे बालक को क्या पता है इन सब बातो का ! वह तो आज बहुत खुश है। इतने दिन से वह परेशान था—मैं बाहर गया था, रेखा घर से बेघर हो रही थी। बेचारा बच्चा मा-बाप दोनो को खोकर अकेला रह गया। आज उसे प्राप्त है—मा भी, बाप भी। पर शायद प्यार न बाप का प्राप्त है न मा का। मेरे मन मे तो शका का भूत सवार है। और रेखा उसे यदि प्यार करती तो घर से बेघर क्यो होती ! कुछ अपराध था तो मेरा हो सकता था, बेचारे बालक का तो नहीं ! पर जाने दो इन बातो को। पुराने अभ्यास ही से सही, मुझे प्रद्युम्न को प्यार करना चाहिए। रेखा को तो मैं अभी भी प्यार करता हू—बेवफा को, कुल-कलकिनी को। फिर बालक ने क्या बिगाडा है ? वह बात भी मैं पूछ लूगा, यदि मैं वापस सही-सलामत लौट आया, यदि मुझे स्वय न मरना पडा। और यदि मुझे ही मरना पडा तो केवल कुछ घडी के जीवन के लिए एक और दर्द को दिल मे क्यो उत्पन्न करू !

प्रद्युम्न बहुत बातें कर रहा है, और मैं सब का उत्तर दे रहा हू। कुछ ठीक, कुछ बे-ठीक। रात मेरे बक्स से बहुत चीजे उसे मिल गई है। मेरे आग्रह से रेखा ने बडे सकोच से वह कीमती साडी पहनी है जो मैं दूर पर जाकर खरीदकर लाया हू उसके लिए। क्यो साहब ? सकोच से क्यो ? चाव से क्यो नही ? खैर, जाने दीजिए।

शोफर कार ले आया है। अजब ढग से वह देख रहा है हम लोगो को। जैसे वह राजदा हो। लगता है वह मन ही मन मुझ पर हस रहा है, मानो

कह रहा है—अरे, बडे गधे, लानत है तुझपर । तू इतना बडा आदमी है तभी इस हरामजादी को सजा-बजाकर ले जा रहा है, हँसते-हँसते बाते करता हुआ । अरे, हम छोटे आदमी यह सब बर्दाश्त नही कर सकते । म होता तो गडासे से सिर काट डालता छिनाल का । छिनाल औरत का भी भला क्या पतियाव ।

सब कुछ उसकी आखे कह रही हैं और मैंने उससे आखे चुरा ली है । बूढा माली दर्द-भरी नजर से मेरी ओर देख रहा है । सब सब कुछ जानते थे पर जिसे जानना चाहिए था—वह मैं नही जानता था ।

यह बाजार आ गया । कनाट प्लेस । पहले जब रेखा यहा मेर [illegible] आती थी दर्जनो चीजे खरीदने का प्रोग्राम बनाती हुई, तो कितनी अच्छी लगती थी तब । किन्तु आज तो वह चुप है । अजी, रेखा [illegible] है यह । यह तो रेखा की लाश है ।

"चलो रेखा, चलो बच्चे, आओ, खरीदो । अपनी पसन्द की [illegible] । और रेखा, जरा इधर तो आओ । एक चीज मैंने पसन्द की है तुम्हारे लिए । देखोगी तो खुश हो जाओगी ।" रेखा है कि उसके होठ सूख रहे है । आखो की पुतलिया घूम रही हैं । वह डर रही है । और मैंने एक हीरे की अगूठी खरीदकर उसकी नाजुक उगली मे डाल दी है । लो साहब, मेरी सगाई हो रही है रेखा से । खुशिया मनाओ, बगले बजाओ । आओ आप सब [illegible] आओ, मिठाइया खाओ । खुशी का मौका है, आनन्द का अवसर है । सगाई हो रही है मेरी रेखा से ।

क्यो ? आप चौक क्यो गए ? क्या मैं बूढा हो गया हू ? [illegible] चालीस का भी नही हुआ ? रेखा तीस के पेट मे है । हम दोनो [illegible] भरपूर है । बराबर की जोडी है । हमारी सगाई क्या ठीक नही है [illegible] हँसते है । हँसिए साहब, हँसिए, यह हँसने ही का मौका है । [illegible] रहा हू । हा-हा-हा-हा ।

लेकिन रेखा चुप है शरमा रही है, अथवा डर रही है, [illegible] दुलहिन की भाति । न जाने क्यो फिर सिर मे चक्कर [illegible] । [illegible]

गधे के सिर, जरा धीरज धर। अब कुछ ही घडी की वात है। तेरा पूरा इलाज हो जाएगा। सिरदर्द का अचूक इलाज मेरी जेव मे है।

प्रद्युम्न ने वहुत-सी चीजे खरीदी हैं। रेखा उसे रोक रही है और मे वढावा दे रहा हू—खरीदो-खरीदो वच्चे ! खूब खरीदो। लेकिन यह क्या बात है—वेटा कहते मेरी जवान कटती है। खैर, खरीदो वच्चे, खरीदो, खूव। अभी जेव मे रुपये है, वहुत हैं। घडी-भर वाद ये सव मेरे किस काम आएगे भला ! सभी को खर्च कर दिया जाए।

सिनेमा आ गया पिक्चर कौन-सी है, यह जानने से मुझे क्या सरोकार है ? मैंने टिकट खरीदे है। टिकट लेकर चल दिया, फिरती लेना भूल गया। वह पुकार रहा है—फिरती वापस लीजिए साहव। लाओ भाई दे दो या अपने पास रख लो। मेरे किस काम की हैं ये सव चीजे !

वाक्स मे हम जा वैठे। पिक्चर शुरू हो गई है। मगर सिर मे चाकू चल रहे हैं मालूम होता है, शरीर का सारा खून सिर मे आकर जमा हो गया है। पता नही इतना शोर क्यो हो रहा है ? शायद वाहर लोग लड रहे है, चीख-चिल्ला रहे हैं, या वादल गरज रहे है या क्या हो रहा है ! कुछ भी हो। मैं तो पिक्चर देख रहा हू। पर दीखता तो कुछ भी नही ! यह क्या वात है ? ये तो रग-विरगे धब्वे आ रहे है, जा रहे है। चश्मा तो मेरी आखो पर लगा है। फिर यह क्या वात है ! शायद चश्मा उतर गया है। नम्वर वदलवाना होगा। दूसरा चश्मा खरीदना होगा। लेकिन किस-लिए ? केवल दो घडी की वाकी जिन्दगी के लिए ? अरे वाह रे मूर्ख ! दत्त, तू मूर्ख है ऐं ? किसने कहा ? "रेखा, तुमने सुना ?"

"क्या ?"

"कुछ नही। पिक्चर है शानदार। क्यो है न ?"

रेखा मेरे मुह को ताक रही है।

अकस्मात् ही मैं उठ खडा हुआ हू। रेखा घवरा गई है। "क्यो ? क्या हुआ ?"

"ओफ, वडी गलती हो गई, रेखा ! अभी आया मैं पाच मिनट मे।

अभी आया। अभी।" और मैं चल देता हूं, बाहर आदमी है, आ रहे है, जा रहे है। शाम का झुटपुटा है यह। मेरे काम के उपयुक्त ही वक्त है।

चलो दत्त, अब तुम आज़ाद हो। हिम्मत करो। अब कौन तुम्हे रोक सकता है! तुम्हारा मददगार, सच्चा दोस्त तुम्हारी जेब मे है।

शोफर से मैंने कह दिया है कि मेम साहब को पिक्चर खत्म होने पर घर ले जाए। और मैं गाडी स्टार्ट करके राय के घर आ पहुचा। रेखा वराण्डे मे खडी थी। मैंने सकेत से पूछा, "क्या राय घर मे है?"

"जी हा," उसने कहा, "क्या खबर कर दू?"

"मै स्वय चला जाऊगा।" और मैं भारी-भारी कदम [illegible] ऊपर चला गया।

राय ड्रेसिग टेबल के सामने खडा बाल बना रहा था। [illegible] एक तौलिया लपेटा हुआ था। वह गुसल करके निकला था। [illegible], "राय, मैं आ पहुचा!"

वह घूमकर खडा हो गया। भय से उसका चेहरा [illegible] हो गया।

"डरो मत, डरो मत! यह कहो, क्या तुम रेखा से शादी करने को तैयार हो? क्या तुम उसे और उसके बच्चे को आराम और [illegible] से रख सकोगे?"

लीजिए साहब, क्या दिलचस्प सवाल मैं कर रहा हू! अभी [illegible] मैं रेखा को सगाई की अगूठी पहनाकर आया हू, और अभी यह सवाल कर रहा हू। मगर इसमे आश्चर्य की बात क्या है! दुनिया मे बहुत-सी दिलचस्पिया है। एक यह भी सही।

"हा, राय, जवाब दो।"

राय एकटक मेरी ओर देख रहा है। एक [illegible] उसके होंठों पर छा गई, वह कहता है

"क्या रेखा ने आपसे कुछ कहा है?"

"सब-कुछ।"

"खैर, अच्छा ही है।"

"कहो, तुम उससे शादी करोगे ?"

"नही।"

"क्यो नही ? क्या तुमने रेखा को घर से वेघर नही किया ? उसे तुमने व्यभिचारिणी नही बनाया ?"

"वह स्वय मेरे सिर आ पडी। वह तुम्हे घृणा करती है।"

"और तुमसे प्रेम करती है ! तो तुम उससे शादी क्यो नही कर लेते ?"

"तब तो जो-जो औरते मेरे साथ सोती है, मुझे उन सबसे शादी करनी पडेगी ?"

"बदमाश, कुत्ता !" और मैंने रिवाल्वर निकाल लिया है। राय की आखे फैल गई हैं। उसने कुछ कहना चाहा, पर होठ हिलकर रह गए हैं। मुह से बात नही फूटती है। वह बाथरूम की ओर खिसक रहा है।

मैंने कहा, "हिलना नही। रिवाल्वर मे बारह गोलिया हैं।"

और वह चीते की तरह मुझपर टूट पडता है। उसने मेरी कलाई पकडली है। हम गुथ रहे हैं। यह प्राणो का युद्ध है। मैंने उसे घर पटका है। उसका सिर फट गया है। वह घायल साड की भाति कराह रहा है।

मैंने रिवाल्वर को फिर जाच लिया है। मेरी उगली घोडे पर है। मैंने उसे दबोच रखा है।

"अब बोल, शादी करेगा ?"

"नही।"

"नही ?"

"नही।"

"तो ले।"

धाय !

धाय ! !

धाय ! ! !

सब खतम ! खेल खतम। मर गया कुत्ता ! गोली ने भेजा फोड दिया।

कितना खून निकला है!

और एक बार देखकर मैं चल देता हूँ। बेबी चीखती हुई आती है। एक नौकर भी है।

"हाथ ऊपर करो!" मैंने कड़ककर नौकर से कहा। नौकर हाथ उठाकर खड़ा हो जाता है।

"रास्ता छोड़ो!" मैं बेबी को एक ओर धकेलता हुआ निकल जाता हूँ।

चौकीदार और माली गाड़ी की राह रोके खड़े हैं। मैंने [illegible] दिखाकर उन्हें डरा दिया है।

और मैं घर लौट रहा हूँ। सामने की [illegible]। अभी रिवाल्वर में नौ गोलियाँ और हैं। [illegible] दूँ! यहाँ कौन मेरा हाथ रोकेगा! लेकिन [illegible] भर देख लूँ!

मैं घर आ गया हूँ। रेखा पागल की भाँति [illegible]। चेहरे पर रक्त की एक भी बूँद नहीं है। मैंने उसे बता दिया [illegible] राय को मार डाला है। मैं उससे अनुरोध कर रहा हूँ कि वह [illegible] नर्म गर्म आलिंगन मुझे दे, और मेरे कण्ठ में [illegible] मार दे। कुछ ज्यादा दिक्कत नहीं होगी [illegible] है। मेरे मन की मन में रह गई। उसका सिर फट गया है।

उसे बिस्तर पर लिटाना चाहिए। मैं उठा रहा हूँ। [illegible] हूँ।

"तब लाचारी है। चलिए साहब।" सब नौकर-चाकर आ जुटे हैं। प्रद्युम्न भी जग गया है। वह रो रहा है। 'डैडी-डैडी' पुकार रहा है।

अब मैं क्या कहू ? क्या करू ? क्या कर सकता हू ?

"बेटे मेरे, ममी का ध्यान रखना।" मेरे मुह से निकला। आसू भी निकले, और निकलते चले जा रहे है। बूढा माली रो रहा है। वह रोते-रोते मेरे कदमो पर गिर गया है। मैं कह रहा हू, "रामू, मालकिन का ध्यान रखना। अभी डाक्टर को बुला लेना। लो, ये चाभिया हैं।" चाभियो का गुच्छा जेब से निकालकर मैंने उसे दिया है।

"चलिए साहब ! मैं जा रहा हू रेखा, मैं जा रहा हू, जा रहा हू— डार्लिंग, मे मैं जा रहा हू। विदा, अलविदा !"

# रेखा

घर के ही चिराग से घर में आग लग गई! अपने ही हाथों [illegible] सुहाग लुटा दिया! हाय रे भाग्य! इसे ही कहते हैं स्त्री-बुद्धि, [illegible]-कारिणी बुद्धि। पैदा होते ही मैं क्यों नहीं मर गई! [illegible] घोटकर क्यों न मार डाला! जैसे सापिन अपने [illegible] है, वैसे ही मैंने सोने का घर फूंक दिया!

लाज भी मैं निर्लज्जी कहां तक करूं? अब तो [illegible], [illegible] मेरी ही यशोगाथा का बखान हो रहा है। ऊंचे घर की [illegible] की बहू, उच्चशिक्षा-प्राप्त मैं अन्त में कुतिया बन गई! [illegible], [illegible]-गली कुत्तों के साथ मारी-मारी फिरने वाली कुतिया [illegible]!

मे जले, भुने। पुरुष की प्रतीक्षा पूरक रूप मे नही, जीवन-साथी के रूप मे नही, वासना-पूर्ति के माध्यम के रूप मे। कैसी भयानक है यह एकागी समाज-व्यवस्था! खराब, बहुत खराब! स्त्रियो का अविकसित मस्तिष्क, भावुक हृदय यदि वासना के आवेश मे अपना सतुलन खो दे, तो यह केवल उसी का दोष नही है, समाज-व्यवस्था का भी दोष है।

यौन आवेग मन शारीरिक आवेग है। इसमे एक वह शरीर-आवेग है जिसका सम्बन्ध जननेन्द्रियो की चरम उत्तेजना के बाद क्षरण पर सीमित है। दूसरा वह जो प्रत्येक जोडीदार मे एक-दूसरे के निकट शरीर से मानसिक सम्पर्क स्थापित करता है। यौन प्रक्रिया बडी जटिल है। उसका सम्बन्ध मन शारीरिक आवेग से है। घरेलू जानवरो एव सभ्य मनुष्यो मे तो यह एक सरल क्रिया है, परन्तु प्राकृतिक अवस्था मे यह उतनी सरल नही है। आवेग की चरम प्राप्ति के लिए पुरुष को अतिशय सक्रियता और आत्मप्रदर्शन तथा स्त्री को दीर्घ साधना और ध्यान करना पडता है। मूल लक्ष्य यौन स्फीत की वृद्धि है। वह दोनो मे समान रूप से, पूर्वराग द्वारा, जो शारीरिक भी हो और मानसिक भी, होना चाहिए। इस यौन स्फीत की धीमी-तीव्र गति ही मे प्रेम की डोर बधी होती है, जिससे खिची हुई औरत अवश अवस्था मे एक पुरुष को त्यागकर दूसरे पुरुष तक पहुच जाती है, और यह भूल जाती है कि उसका कोई सामाजिक रूप भी है या नही।

स्त्रिया दूरदर्शिनी नही होती। उनमे स्वाभाविक दुर्बलताए भी है और मानसिक भी। इसी से समाज ने उन्हे अपने नीति के बन्धनो मे कस-कर बाधा हुआ है। आज तो मै उन सब बन्धनो के महत्त्व को, आवश्यकता को समझ गई है। कल तक ही तो मै उन सब बातो का प्रबल विरोध कर रही थी। तब मै नही जानती थी कि मनुष्य का सामाजिक सगठन ही उसके व्यक्ति के सब स्वार्थों का सरक्षण है। पर 'अब पछताए होत क्या, जब चिडिया चुग गईं खेत।'

किन्तु अब दत्त की रक्षा कैसे की जाए? मै अपना शरीर, प्राण और आबरू तक दे सकती हू। मै जान की बाजी लगा दूगी और प्रत्येक मूल्य

पर उनके प्राणों की रक्षा करूँगी। मैंने वेत्री को मिला लिया था—वह राज़ी भी हो गई। और हमने तय किया कि हम अपना बयान बदल देंगे। यह बयान दे देंगे कि हत्या मैंने की है। वेत्री गवाही देने को राज़ी हो गई थी, पर दत्त ने स्वीकार नहीं किया। किसी तरह स्वीकार नहीं किया। मेरे आँसुओं पर भी वे नहीं पसीजे। और हर चन्द यही कहते रहे—मैंने राय को मारा है। मैं उनका ज़िम्मेवार हूँ। वे कहते हैं कि मैं अपराधी नहीं, मैंने उस आदमी को मारकर कर्तव्य का ही पालन किया है।

अब कौन उन्हें समझाए! एक मूर्ख बदनसीब औरत को जो दुर्भाग्य से वासना का शिकार हो गई, इतना बड़ा दण्ड मिल रहा है। उस [illegible] का सब प्राप्तव्य छीनकर केवल जीवन—निर्जीव जीवन [illegible] दिया गया। अरे, इस पृथ्वी पर इतने नर-नारी रहते हैं। [illegible] भी है जो मुझ मंदभागिनी पर दया करे, मुझ पर [illegible] कर पसीजे? सारा संसार ही निष्ठुर हो गया। [illegible] विधाता ही रूठ गया उसे सहारा कहाँ मिलेगा? मुझे [illegible] ने भी नहीं बताया था कि मेरा दुर्भाग्य पहाड़ से बनकर [illegible] पहाड़ से पहाड़ ही टकरा गया।।

आँसू-आँसू-आँसू! यहाँ से वहाँ तक—घर में, [illegible] सब सुख-सुविधाओं के साथ रहती हूँ और इन [illegible] दत्त बन्द हैं—मेरे आँसुओं की नदी बह रही है। किन्तु [illegible] डूब रही हूँ, सारी दुनिया तो अपनी ही धुन में है। [illegible] पर असर नहीं है, किसी पर नहीं है। आज दुनिया ने [illegible] दिया है, दत्त के साथ ही। आज ही तो मैंने जाना कि [illegible] दुनिया थे। पति ही स्त्री की दुनिया होता है। पति ही [illegible] है, जीवन का सहारा है सब-कुछ है सब-कुछ है।

# सुनीलदत्त

मैंने राय को गोली मारी है। बिलकुल ठीक किया है मैंने। मुझे इसका कोई पश्चात्ताप नही है, कोई अफसोस नही है। आप कह सकते है कि मैंने कानून को अपने हाथ मे लेकर अच्छा काम नही किया। क्यो नही किया ? ऐसे ही अवसर होते है जब तेजस्वी जन कानून को अपने हाथ मे लेते है, उन्हे लेना चाहिए।

कानून न्याय नही है, व्यवस्था है, जो न्याय का स्थानापन्न है। उसका काम समाज का सतुलन कायम रखना है और इसीलिए कानून के लिए कभी कभी सत्य का, न्याय का उल्लघन करना और व्यवस्था को कायम रखना जरूरी हो जाता है। परन्तु व्यवस्था सामाजिक मर्यादा से सम्बन्धित वस्तु है, चरित्र से सम्बन्धित नही। हो सकता है कि कहीं-कहीं व्यवस्था चरित्र की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाए और चरित्र की श्रेष्ठता की अवहेलना कर दे। परन्तु वैयक्तिक दृष्टि से चरित्र ही की महत्ता है। वैयक्तिक सौष्ठव की दृष्टि से चरित्र को ही तेजस्वी पुरुष व्यवस्था पर महत्त्व देते है और ऐसी अवस्था मे कानून को उन्हे अपने हाथो मे लेना ही पडता है।

बेशक मैंने कानून को अपने हाथो मे ले लिया। मैंने राय को अपनी अन्तरात्मा की आवाज पर मार डाला। वह आदमी, जो घर की पवित्रता को भग करता है, दूसरे की विवाहिता स्त्री को व्यभिचारिणी होने मे सहायता देता है, व्यभिचारिणी बनाता है, उसकी कम से कम सजा मौत है। वह समाज के लिए एक भयकर खतरा है। वह एक हँसी-खुशी से

भरपूर परिवार की शाति को भग करता है।

परन्तु कानून मे इसकी सज़ा नही है, आज के कानून मे—जव व्यभिचार एक साधारण दोप माना जाता है। खूव समझदार, सभ्य, शिष्ट पुरुप समझते हैं कि व्यभिचार से आदमी का ज्यादा कुछ नही विगडता। शरीर को धो-पोछकर साफ कर लिया जा सकता है। वे प्रेम को महत्त्व देते हैं, काम-वासना का वैज्ञानिक विश्लेपण करते है, परन्तु वे भूल जाते है कि कुछ सकटकालीन परिस्थितिया भी होती है, जव स्त्री की, पुरुप की और कभी-कभी सवकी कुर्वानिया करनी पडती हैं। तव सुख-सुविधा और व्यक्तिगत अधिकार नही देखे जाते। दुनिया मे युद्ध होते रहे हैं और तव लाखो मनुष्यो का रणागण मे जूझ मरना उनके जीवन का सर्वोत्तम ध्येय माना गया है। परन्तु जीवन का सर्वोत्तम ध्येय हँसी-खुशी मे जीवित रहना है, मरना नही। पर यह आपत्कालीन धर्म है।

हो सकता है कि स्त्री-पुरुपो को गृहस्थ जीवन मे शारीरिक वाधाए हो, मानसिक वाधाए भी हो—इतनी वडी, इतनी शक्तिमान् कि जिनके कारण जीवन का सारा आनन्द ही खत्म हो जाए। उस समय स्त्री या पुरुप दोनो को अपने उच्च चरित्र का, त्याग और निष्ठा का सहारा लेना चाहिए, वासना का नही।

राय-जैसे लम्पट समाज मे वहुत है। ये लोग सभ्य समाज के कीडे हैं, सभ्यता की मर्यादा को दूपित करनेवाले। आप उन्हे सह सकते है, वर्दाश्त कर सकते है, क्योकि आपमे सत्साहस का अभाव है, स्वभाव की दुर्वलता है आपमे। पर मैं वर्दाश्त नही कर सकता। मैंने उसे वर्दाश्त नही किया। एक गन्दे कीडे को मार डाला। समाज को इस अपवित्रता से मुक्त कर दिया।

अभी जेल से अदालत आते हुए मैंने देखा—अदालत के वाहर हजारो नर-नारी मेरे लिए दुआ माग रहे हैं। जवान कर नारिया वहुत उत्तेजित है। वे सव मेरे समर्थन मे हैं। वे समझती है, मैने ठीक किया—समाज के खतरे को खत्म कर दिया, नारी की पवित्रता का झण्डा ऊचा किया।

वे लोग चाहते हैं कि मैं हत्या के अभियोग से मुक्त हो जाऊं, पर यह मैं कैसे चाह सकता हूं !

इतना भारी मैंने समाज का उपकार किया है, और अपने चरित्र की, प्रतिष्ठा की रक्षा की है, परन्तु कानून को अपने हाथ में लिया है। मेरे लिए वह आवश्यक था, अनिवार्य था। अब कानून अपना काम करे। मुझे उसका दण्ड दे। मैं नहीं चाहता कि लोगों के सामने यह उदाहरण कायम हो जाए कि कानून को हाथ में लेना व्यक्ति के लिए उचित है, और अनधिकारी लोग ऐसा करें।

असाधारण काम असाधारण पुरुष ही कर सकते हैं, जिनमें असाधारण क्षमता, शक्ति और धैर्य हो। वही असाधारण काम मैंने किया है। इसी से मुझे अपने ऊपर, अपने काम पर गर्व है। आप कह सकते हैं कि मैंने कानून के विरुद्ध काम किया है, पर आप यह नहीं कह सकते कि मैंने नीति-विरुद्ध काम किया है। आप मुझ पर कायरता का आरोप भी नहीं लगा सकते, जो कि एक अत्यन्त घृणित आरोप है। बस, यही मेरे लिए यथेष्ट है।

आप कहेंगे, रेखा का भी तो दोष है। वह भी तो वासना के बहाव में बह गई। उसने भी तो कुलटा का आचरण किया, पति से विश्वासघात किया, पर-पुरुष को अपना देह सौंप दिया। उसे क्यों नहीं मार डाला ?

ठीक है, आप शायद यही करते। राय को मार डालने का शायद आपको साहस न होता। पर मैंने ऐसा नहीं किया। रेखा पथ-भ्रष्ट हो गई। कुलवधू की मर्यादा उसने भंग की, मेरे साथ विश्वासघात किया। सब ठीक है। उसके विरुद्ध ऐसे ही और भी आरोप लगाए जा सकते हैं, जो साधारण नहीं हैं। समाज और गृहस्थ-धर्म की पवित्रता को भंग करने की दृष्टि से वे राय के अपराध से कम नहीं हैं। मैंने रेखा को गोली नहीं मारी। उसे अपनी सब सम्पत्ति की स्वामिनी बना दिया। परन्तु आपने देखा नहीं, वह दण्ड से वंचित नहीं रही। उसने अपने-आपको स्वयं ही दण्ड दे डाला। ऐसा दण्ड तो मृत्यु से भी बहुत अधिक भीषण और कष्टकर है।

मैं घोषित करता हूं कि उसे जीवित रहने दिया जाए—सब सुख-सुवि-

धाओ के साथ समाज के बीच। और दुनिया को देखने का अवसर दिया जाए कि रेखा के समान वासना का शिकार बननेवाली कमज़ोर मन की स्त्रियो को अन्त मे कैसे दिन देखने पडते है, उन्हे समाज से कटकर, समाज की विप-दृष्टि मे तिरस्कृत और दर्द-भरा असह्य जीवन व्यतीत करना पडता है—स्त्रीत्व के सब आशीर्वादो, सम्मानो, आनन्दो, सुरक्षाओ और पुण्यो से रहित।

मैं समझता हू, रेखा के लिए यह सजा काफी है, जो उसे मैने नही—उसके नारी-जीवन ने दी है। परन्तु रेखा के लिए मैने जो सबसे बडी सज़ा दी है, वह यह कि मैं रेखा को अब भी उतना ही प्यार करता हू जितना सदा से प्यार करता रहा हू। और उसे केवल अपनी धन-सम्पत्ति और प्रतिप्ठा ही नही, अपना वह असाधारण प्यार भी—जो अछूता और उसी के लिए था—दिए जा रहा हू, जिसका अनिर्वचनीय आनन्द उसने अनुभव किया, परन्तु अब वह उसके जीवन के अन्त तक असह्य-दुस्सह दर्द बना रहेगा।

# न्यायपति

यह प्रमाणित है कि अभियुक्त सुनीलदत्त एक प्रतिष्ठित और प्रतिभावान् पुरुष है। वह राज्य का एक निष्ठावान् आफीसर रहा है, और उसने कठिन अवसरों पर धैर्य और बुद्धिमत्ता का परिचय दिया है। उसका काम सराहनीय है, और उसे कभी गम्भीर परिस्थितियों मे भी मन का संतुलन खोते नहीं देखा गया। वह एक आदर्श चरित्रवान् व्यक्ति है।

अभियुक्त पर हत्या के इरादे से मृत दिलीपकुमार राय के घर मे जाने और उसकी हत्या करने का आरोप है। अभियुक्त ने स्वीकार किया है कि उसने यह हत्या की, और हत्या के ही इरादे से वह मृत व्यक्ति के घर गया। परन्तु वह अपने को दोषी नहीं स्वीकार करता। उसका कहना है कि उसने अपने उच्च चरित्र और निष्ठा के आधार पर ही यह कृत्य किया है। वह यह स्वीकार करता है कि उसने कानून को अपने हाथ मे लिया, परन्तु वह यह नहीं मानता कि ऐसा करके उसने कुछ अनुचित किया है। बेशक वह सिद्धान्ततः कानून को हाथ मे लेने के विरुद्ध है, परन्तु अपने को वह इसका विशिष्ट अधिकारी मानता है।

मृत पुरुष की हत्या हुई है, और यह हत्या दृढ निश्चय के साथ अभियुक्त ने की है। मैंने अभियोग के सब अंगों पर विचार किया है और मैं समझता हूं कि कानून की दृष्टि मे कुछ बातें विचारणीय हैं, जिनके आधार पर निर्णय निर्भर है। कानून की नजर मे छोटे-बड़े का भेद नहीं है। सब बराबर हैं। कानून मे यदि नुक्स है तो इसकी जिम्मेदारी कानून बनानेवाली धारासभा पर है। मुझे केवल यह देखना है कि वर्तमान कानून

जैसा भी है, उसकी यथार्थता की सीमा मे जो व्यक्ति जिस रूप मे आता है, उसका छोटे-बडे का बिना विचार किए, कानून के अनुसार निष्पक्ष विचार होना चाहिए। इसलिए मै जनमत या भावुकता को प्राथमिकता नही दे सकता, और यह निर्णय देता हू कि अभियुक्त दोषी प्रमाणित है। और मेरी आज्ञा है कि उसे फासी पर लटका दिया जाए, जब तक कि उसके प्राण-पखेरू उसके शरीर से पृथक् होकर अन्तरिक्ष मे न उड जाए।

# रेखा

आज साजन की विदाई का दिन है। झूल रहे है वे। मेरे साजन। मेरे कृष्ण कन्हैया। देखो लोगो! देखो! अरी कुलवधुओ, भले घर की बहुओ, तुम भी देख लो अपनी बडी-बडी आखो का सुफल ले लो।

हा-हा, मैने ही उन्हे उस झूले पर चढाया है, उनके प्यार का बदला चुकाया है। कौन औरत मेरे इस काम मे बराबरी करेगी!

अरी, वे झूल रहे है। गाओ, गीत गाओ। बडी भारी बरसात आई है। सावन-भादो की झडी लगी है। काले-काले बादल उमड रहे है, गरज रहे है बदरा। सावन मे सब सजनी झूलती है। आज मेरे साजन झूल रहे है। गाओ री गाओ, चुप क्यो हो! क्या सब मर गई! दुनिया मे इतनी औरते है, पर मै अकेली ही गा रही हू। कोई मेरे सुर मे सुर नही मिलाती। क्यो? अरी सावन है, सावन क्या रोज-रोज आता है! गाओ, गाओ!

झूलना झुलाओ
झूलना

ओह! सावन-भादो की यह झडी! इस बार बरसकर शायद फिर कभी न बरसेगी ये आखे। अच्छा बरसो, बरसो। अरी बरसो, खूब बरसो। मेरे साजन झूल रहे है। झूलो प्यारे, झूलो। खूब सुख मिल रहा है! आखे मुद गई है। बदन निढाल हो गया है। वाणी मूक और अग निस्पद हो गए है। ठीक, ठीक! आनन्दातिरेक की यही तो पराकाष्ठा है। पर इस बार अकेले ही यह आनन्द लिया! मुझे यही छोड दिया!

अकेले ? भला कही दुनिया मे, लोक मे, परलोक मे, औरत अकेली रही भी है ? औरत क्या अकेली रहने को विधाता ने सिरजी है ! ज़रा मुझे भी झुला लो। ओ प्यारे, ओ साजन ! इतने स्वार्थी तो न बनो।

और यह क्या है ? क्या प्रलय हो रही है ! शताब्दियो का समतल का उत्तुग हिमाचल गल-गलकर, जल-जलकर, भूतल पर खिसका चला आ रहा है। क्यो ! किस लिए ! नगराज का क्या पतन हो रहा है ? नही रे भाई, नही। भूतल पर आकर उसने गगा का नाम धारण किया है। पतितो को पावन करने के लिए अपना पतन किया है। देखो तो, भगवान मन-भावन गगा की धार को अपने मस्तक पर ले रहे है। अरी आओ, अभागिनी नारियो ! मरने से पहले एक बार इस सुरसुरि मे मज्जन कर आओ। सब पाप-ताप हर हर ले जाएगे। आओ री, आओ !

हा-हा ! सभी नदिया तो महागगा मे मिलती है ! नदी ही क्या, नाले, गदे नाले भी मिलते हैं। मिलकर सब गगा-जल हो जाते है।

इक नदिया इक नाल कहावत, मैलो ही नीर भर्‌यो।
ज्योही दोनो एकबरन भए, सुरसरि नाम पर्‌यो।
अरी, सुरसरि नाम पर्‌यो।

प्रद्युम्न जग गया है। वह रो रहा है—डैडी कहा है ? डैडी कहा है ? चल बेटा, डैडी को ले आए।

आज ही का है मिलन-दिन, आज ही उनकी बिदाई। चलो बेटा चलो। बस वक्त भी हो गया है। हा, योही चलो। कपडे बदलने का समय अब कहा है ? ऐसे ही चलो !''

उन्ही का तो यह कटस्वर है ? सुन रही हू सुन रही हू, रेखा, मै जा रहा हू। मै जा रहा हू।'' जाओ स्वामी, तुम्हे जाना होगा, और मुझे रहना होगा।

सारा घर मैने गगा-जल से धोया है, तुम्हारे लिए, तुम्हारे स्वागत मे। लेकिन इस भूमि पर कहीं न कहीं तुम्हारी चरण-रज होगी ही—इसी से घर के फर्श को चूमती फिर रही हू। नौकर-चाकर रो रहे है। प्रद्युम्न

रो रहा है। सब रो रहे हैं। मैं चूमू न इस चरण-रज को ? मैं तो नित्य चूमूगी।

हा, यही वे आकर विराजेंगे। अपने आंचल मे—नहीं, नहीं, सिर के केशो से भाड़कर मैंने इस दालान के फर्श को साफ किया है। अरे लोगो, रोओ मत। मुझे मत रुलाओ, आज मेरे प्रियतम की अवाई है और आज ही विदाई है, आज ही है मिलन-दिन और आज ही है चिर विदाई। अरे हृदय, धीरज धर। सयोग-वियोग तो दुनिया के धन्धे हैं, तनिक तो कठोर बन अधर्मी ! दूर रहो सब, दूर रहो। मुझे छूना नही। मुझे चूमने दो इस भूमि को। साजन आ रहे हैं आज। हा बेटा ! चलो अब, उन्हे ले आए। फिर उन्हे विदा भी करना होगा। मैं अभागिनी कर भी क्या सकती हू ? उन्हे जाना होगा, मुझे रहना होगा।

चलो बेटा ! चलो मेरे लाल !

कोई गा रहा है

आज गवनवा की साम।
उमरि मोरी अजहूँ है बारी।
आज०।
साज-समाज पिया लै आए,
लाए कहरवा चार।
नदिया किनारे बालम मोरा रसिया,
देत घूंघट पट डार।
आज गवनवा की साम।
उमर मोरी अजहूँ है बारी।

० ० ०

मुद्रक रूपक प्रिंटर्स, दिल्ली–३२ 1559